सनातन में कुप्रथाएं?
एक सफेद झूठ!

कृष्णांश अग्रवाल

सनातन में कुप्रथाएं?

एक सफेद झूठ!

कृष्णांश अग्रवाल

श्री गणेशाय नमः

प्रथा और कुप्रथा

जब कोई व्यक्ति किसी विचार से प्रभावित होकर धर्म की आड़ में कोई गलत कार्य करता है और जब समाज उसी कार्य को बिना सोचे समझे अपना लेता है तब वह एक कुप्रथा बन जाती है।

वहीं, जब सही विचारों के साथ किसी कार्य को समाज द्वारा अपनाया जाए और उस पर आचरण किया जाए तब वह प्रथा बन जाती है।

विषय सूची

मन की बात

यह मेरी प्रथम पुस्तक है, तो शायद मुझे उतना प्रेम ना मिले जितना वामपंथी इतिहासकारों को और लेखकों को मिलता है। शायद मेरी बातें भी आपको तर्क हीन लगे, शायद मेरी बातों के, मेरे द्वारा लिखी गई इस किताब में दिए गए तर्कों के, आप सबूत भी मांगे!

परंतु मैं यही कहूँगा कि जब बिना तर्कों के, बिना सबूतों के आधार पर आप अपनी इतिहास की किताबों पर विश्वास कर सकते हैं, आप उन विषयों को पढ़कर अपनी परीक्षाओं में लिख सकते हैं, सिर्फ इस आधार पर कि वह आपकी किताब में लिखा है, तो मुझ पर भी विश्वास करना होगा!

जब उन पर विश्वास किया जा सकता है, तो मेरे साथ अन्याय क्यों? मेरी बातों का भी विश्वास करना पड़ेगा।

सनातन धर्म पर हमेशा से ही यह कुठाराघात होता आया है कि सनातन धर्म में स्त्रियों को दबाया जाता है, उनकी बातों को कोई अहमियत नहीं दी जाती, भारत में सदैव ही स्त्रियों का शोषण होता आया है, परंतु इस बात का क्या सबूत है?

लेकिन फिर भी हमने इस बात को बिना सोचे समझे मान लिया।

क्या हमने यह प्रश्न पूछा कि, जिस भारत को "भारत माता" के नाम से जाना जाता था, जो एक स्त्रीलिंग उपाधि है। जिस भारत को

"सोने की चिड़िया" कहा जाता था, वह भी स्त्रीलिंग उपाधि है। जिस सनातन धर्म के ग्रंथों में स्त्रियों के सम्मान की बात की गई हैं, उस सनातन धर्म में, उस भारत में स्त्रियां शोषित कैसे हो सकती हैं?

जब आपने यह प्रश्न नहीं पूछे तो फिर मेरी पुस्तक पर कोई भी प्रश्न करना आपको शोभा नहीं देता।

इतने वर्षों की पराधीनता के दौरान अंग्रेजों ने, मुगलों ने हमारे ग्रंथों के साथ, हमारी परंपराओं के साथ इतने विक्षेप किए हैं कि हम सोच भी नहीं सकते, लेकिन फिर भी वह इतिहास जो हमें पढ़ाया जाता था, उसकी सच्चाई का सबूत मांगना हमने उचित नहीं समझा। इसीलिए आज के समय में बताए जाने वाले सच पर प्रश्न करना भी उचित नहीं होगा, क्योंकि हमने झूठ पर भी प्रश्न नहीं किया!

यही तो न्याय है!

- **कृष्णांश अग्रवाल**

प्रस्तावना

अपनी इस पुस्तक में मैंने उन प्रथाओं का विश्लेषण किया है, उन प्रथाओं का जिक्र किया है जिनकी वास्तविकता कुछ और है परंतु उनमें बदलाव कर उनकी असली वास्तविकता के साथ छेड़छाड़ कर सनातन धर्म पर लगातार प्रहार किया जाता है।

इस पुस्तक को पढ़ने से पहले आपको मुझसे एक बात सुनिश्चित करनी पड़ेगी कि आपने अब तक सनातन धर्म की प्रथाओं के बारे में जो कुछ पढ़ा है, वह सब एक किनारे रख कर एक नए सिरे से आप इस पुस्तक को पढ़ेंगे।

जैसा की पुस्तक के नाम से ही पता चलता है कि सनातन में जितनी भी प्रथाओं को कुप्रथा बताया गया, वह सिर्फ एक सफेद झूठ था। या फिर कहा जाए कि सफेदों द्वारा बोला गया झूठ था, अर्थात अंग्रेजों द्वारा बोला गया झूठ।

अंग्रेजों ने बहुत ही सोच-विचार करके सनातन धर्म की परंपराओं के साथ बदलाव किया, और उनके निशाने पर सिर्फ स्त्रियाँ ही थी।

इसीलिए भारत में जितनी भी प्रथाएं स्त्रियों के लिए थीं, उन सभी में विक्षेप कर भारत वासियों के दिमाग में डाल दिया गया, और बहुत ही सुनियोजित ढंग से उसे सनातन धर्म की कुप्रथा कहकर सनातन धर्म को बदनाम करने की कोशिश की गयी।

जिस भारत में महिलाओं के बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती थी उस भारत में यह कहा गया कि महिला कुछ भी नहीं है, और हमने ये बिना सोचे समझे मान भी लिया!

आगे आने वाले पाठों में मैं आपको उन प्रथाओं के वास्तविक रूप के बारे में बताने की कोशिश करूंगा और आप उन्हें समझने की कोशिश कीजिएगा!

कुछ प्रश्न

सामान्यतः किसी भी पाठ के अंत में प्रश्न होते हैं। परंतु मैं इस पुस्तक की शुरुआत से पहले ही आपसे कुछ प्रश्न पूछना चाहता हूँ, जिनके उत्तर आपको किसी परीक्षा में नहीं लिखने। वह प्रश्न आपको सिर्फ अपने मन से पूछने हैं, अपनी आत्मा से पूछने हैं!

- क्या आपने कभी अपना असली इतिहास जाने की कोशिश की है?
- क्या आपको कभी ऐसा नहीं लगता कि सनातन धर्म को ही सदैव निशाना बना कर प्रहार किया जाता है?
- क्या आपके पास इतना सामर्थ्य है कि आप सच को स्वीकार सकें?

अध्याय 1

सती प्रथा: वास्तविक रूप

क्या सती प्रथा का वास्तविक रूप वही है जैसा आज तक हमने पढ़ा या फिर कुछ और?

अगर वास्तविक रूप कुछ और है तो फिर हमें गलत क्यों पढ़ाया गया?

और वह गलत हमारी किताबों में लिखा किसने?

सती प्रथा को जानने से पहले हमें यह जानना पड़ेगा कि वामपंथी इतिहासकारों और लेखकों द्वारा इस प्रथा के पीछे क्या तर्क दिया जाता था और क्या-क्या कारण बताए जाते थे, यह जानना ज्यादा जरूरी है।

पहला तर्क: सती प्रथा के पीछे जो तर्क दिया जाता है उसमें पहला तर्क है माता सती का, जिन्होंने स्वयं को यज्ञ की अग्नि में भस्म कर लिया था। इस प्रथा का नाम जिनके नाम पर रखा गया वह थीं माता सती।

महादेव और माता सती

माता सती भगवान शिव की अर्धांगिनी थी और प्रजापति दक्ष की पुत्री थीं। अपने पिता द्वारा भगवान शिव का अपमान किए जाने पर माता सती अत्यंत क्रोधित हो गईं और क्रोधावश यज्ञ की अग्नि में स्वयं को भस्म कर लिया।

परंतु यहाँ एक बात सोचने की है, कि माता सती के पति यानी भगवान शिव तो जीवित हैं, हालांकि वे भगवान हैं, शंभू (अर्थात स्वयं उत्पन्न होने वाला) हैं, उनका कोई अंत नहीं है, उनकी कोई शुरुआत नहीं है। अब इन वामपंथी इतिहासकारों द्वारा दिया गया तर्क तो तर्कहीन हो गया।

दूसरा, माता सती के साथ किसी ने जबरदस्ती नहीं की थी। उन्होंने पति के अपमान को स्वयं का अपमान मानकर अपनी इच्छा से स्वयं को भस्म किया था। जिस प्रथा के नाम का आधार वामपंथी इतिहासकारों ने माता सती को बनाया था वह आधार ही आधारहीन हो गया!

जब इनका पहला तर्क काम में नहीं आया तो इन्होंने दिया दूसरा तर्क, वह क्या था?

दूसरा तर्क: अंग्रेजी इतिहासकारों द्वारा जो दूसरा तर्क दिया जाता था वह तर्क था जौहर का। पहले के राजघरानों में जब युद्ध करते वक्त पति की मृत्यु हो जाती थी, तो पत्नी अपने मान सम्मान को दरिंदे आक्रमणकारियों से बचाने के लिए हवन कुंड में कूदकर स्वयं

को भस्म कर लेती थी। और यह आक्रमणकारी और कोई नहीं बल्कि अंग्रेज और मुगल ही थे।

रानियों द्वारा किया जाने वाला जौहर

राजघराने की स्त्रियों को देखकर समाज की अन्य स्त्रियों ने भी अपने पति की मृत्यु के बाद, अपनी मान मर्यादा को आक्रमणकारियों से बचाने के लिए स्वयं को अग्नि में भस्म करना शुरू कर दिया, वह भी बिना किसी दबाव में अपनी स्वयं की इच्छानुसार।

लेकिन वामपंथी इतिहासकारों ने इस बात का बतंगड़ बना कर, गलत ढंग से पेश कर भारतीयों के दिमाग में डाला कि भारत में स्त्री को जबरदस्ती आग में झोंका जाता है और उसको अपने पति की चिता के साथ जिंदा जलाया जाता है।

परंतु अब इन अंग्रेजी इतिहासकारों से हमें पूछना चाहिए कि जब स्त्रियों की इतनी ही चिंता थी तो अंग्रेजों द्वारा आक्रमण किया ही क्यों जाता था? युद्ध में उनके पतियों को मारा ही क्यों जाता था?

अब इस तथ्य के भी आधारहीन हो जाने के कारण अंग्रेजी इतिहासकारों द्वारा जो अन्य तर्क दिया जाता था वह देखते हैं क्या था!

तीसरा तर्क: एक अन्य तर्क जो अंग्रेज इतिहासकारों द्वारा दिया जाता है वह है महाराज पांडु और उनकी पत्नी श्रीमती माद्री जी का।

जब महाराज पांडु की मृत्यु हुई तो उनकी पत्नी माद्री जी ने उनकी मृत्यु का कारण स्वयं को समझा जिसके पश्चाताप में उन्होंने अपने पति की चिता के साथ स्वयं को भस्म कर लिया।

महाराज पांडु को किंदम ऋषि का श्राप था कि यदि वह कामांध होकर किसी भी स्त्री का स्पर्श करेगा तो उसकी मृत्यु हो जाएगी।

माद्री और पाण्डु

महाभारत के आदि पर्व के 'सम्भव पर्व' के अंतर्गत, अध्याय 124 में पाण्डु की मृत्यु और माद्री की चितारोहण की कथा का वर्णन है।

महाराज पांडु अपनी प्रिय पत्नी माद्री के साथ वन में घूम रहे थे। पलाश, तिलक, आम, चम्पा, पारिभद्रक तथा और भी बहुत से वृक्ष - फूलों की समृद्धि से भरे हुए थे। जो उस वन की शोभा बढ़ा रहे थे।

नाना प्रकार के जलाशयों तथा कमलों से सुशोभित उस वन की मनोहर छटा देखकर राजा पाण्डु के मन में काम का संचार हो गया। जैसे ही उन्होंने कामांध होकर अपनी पत्नी माद्री को स्पर्श किया, वैसे ही उनकी मृत्यु हो गई।

उनकी पत्नी माद्री भी उनसे काफी प्रेम करती थीं, इसी कारणवश वह विलाप करने लगीं। जब इस बात की खबर कुंती को लगी तो वह भी रोने लगी।

तब माद्री और कुंती, दोनों ने ही अपने पति के प्रेम के कारण स्वयं को उनकी चिता के साथ जलाने का निर्णय लिया। हमें दोनों के बीच हुए संवाद को देखना चाहिए!

महं ज्येष्ठा धर्मपत्नी ज्येष्ठं धर्मफलं मम।

अवश्यम्भाविनो भावान्मा मां माद्रि निवर्तय ।। 23 ।।

अन्विष्यामीह भर्तारमहं प्रेतवशं गतम्।

उत्तिष्ठत्वं विसृज्यैनमिमान् पालय दारकान् ।। 24 ।।

अवाप्य पुत्राँलग्धात्मा वीरपत्नीत्वमर्थये।

(महाभारत, आदि पर्व, अध्याय 124)

कुन्ती ने कहा, ''माद्री! मैं इनकी ज्येष्ठ धर्म पत्नी हूँ, अतः धर्म के ज्येष्ठ फल पर भी मेरा ही अधिकार है। जो भविष्यम्भावी बात है, उससे मुझे मत रोको। मैं मृत्यु के वश में पड़े हुए अपने स्वामी का अनुगमन करूँगी। अब तुम इन्हें छोड़कर उठो और इन बच्चों का पालन करो। पुत्र को पाकर मेरा लौकिक मनोरथ पूर्ण हो चुका है, अब मैं पति के साथ दग्ध होकर वीर पत्नी का पद पाना चाहती हूँ।

अहमेवानुयास्यामि भर्तारमपलायिनम्।

न हि तृप्तास्मि कामानां ज्येष्ठा मामनुमन्यताम् ।। 25 ।।

(महाभारत, आदि पर्व, अध्याय 124)

माद्री बोली- रणभूमि से कभी पीठ न दिखाने वाले अपने पति देव के साथ मैं ही जाऊँगी; क्योंकि उनके साथ होनेवाले काम भोग से मैं तृप्त नहीं हो सकी हूँ आप बड़ी बहिन हैं, इसलिये मुझे आपको आज्ञा प्रदान करनी चाहिये।

मां चाभिगम्य क्षीणोऽयं कामाद् भरतसत्तमः।

तमुच्छिन्द्यामस्य कामं कथं नु यमसादने ।। 26 ।।

(महाभारत, आदि पर्व, अध्याय 124)

ये भरत श्रेष्ठ मेरे प्रति आसक्त हो मुझसे समागम करके मृत्यु को प्राप्त हुए हैं; अतः मुझे किसी प्रकार परलोक में पहुँचकर उनकी उस काम वासना की निवृत्ति करनी चाहिये।

न चाप्यहं घर्तयन्ती निर्विशेषं सुतेषु ते।

वृत्तिमार्ये चरिष्यामि स्पृशेदेनस्तथा च माम् ।। 27 ।।

(महाभारत, आदि पर्व, अध्याय 124)

आर्ये! मैं आपके पुत्रों के साथ अपने सगे पुत्र की भांति बर्ताव नहीं कर सकूँगी उस दशा में मुझे पाप लगेगा।

तस्मान्मे सुतयोः कुन्ति वर्तितव्यं स्वपुत्रयत्।

मां च कामयमानोऽयं राजा प्रेतवशं गतः ।। 28 ।।

(महाभारत, आदि पर्व, अध्याय 124)

अतः आप ही जीवित रहकर मेरे पुत्रों का भी अपने पुत्रों के समान ही पालन कीजियेगा। इसके सिवा ये महाराज मेरी ही कामना रखकर मृत्यु के अधीन हुए हैं।

इसके बाद ऋषि गणों ने उन्हें समझाते हुए कहा कि :-

ऋषयस्तान् समाश्वास्य पाण्डवान् सत्यविक्रमान्।
ऊचुः कुन्तीं च माद्रीं च समाश्वास्य तपस्विनः।।

सुभगे वालपुत्रे तु न मर्तव्यं कथंचन।
पाण्डवांश्चापि नेष्यामः कुरुराष्ट्रं पंग्तपान्।।

अधर्मेष्ववर्थजातेषु धृतराष्ट्रश्च लोभवान्।
स कदाचिन्न वर्तेत पाण्डवेषु यथाविधि।।

(महाभारत, आदि पर्व, अध्याय 124)

वैशम्पायन जी कहते हैं, तदनन्तर तपस्वी ऋषियों ने सत्य पराक्रमी पाण्डवों को धीरज बँधाकर कुन्ती और माद्री को आश्वासन देते हुए कहा, ''सुभगे ! तुम दोनों के पुत्र अभी बालक हैं, अतः तुम्हें किसी प्रकार देह-त्याग नहीं करना चाहिये। हम लोग शत्रुदमन पाण्डवों को कौरव राष्ट्र की राजधानी में पहुँचा देंगे। राजा धृतराष्ट्र अधर्ममय धन के लिये लोभ रखता है, अतः वह कभी पाण्डवों के साथ यथायोग्य बर्ताव नहीं कर सकता। इसीलिए आपको जीवित रहकर अपने बच्चों की देखभाल करनी चाहिए।

परंतु ऋषि-मुनियों के समझाने के बाद महारानी कुंती तो समझ गईं, लेकिन माद्री नहीं समझी और उन्होंने प्रेम वश महाराज पाण्डु की चिता के साथ स्वयं को भस्म कर लिया।

परंतु यहां भी देखा जाए तो उनको किसी ने विवश नहीं किया था और ऋषि-मुनियों के द्वारा समझाने के बाद भी उन्होंने ऐसा किया क्योंकि वह उनसे प्रेम करती थीं।

परंतु धर्म के ठेकेदारों ने इस बात को गलत ढंग से प्रस्तुत किया और सनातन धर्म को बदनाम करने की कोशिश की।

वहीं जब बात रोमियो-जूलियट की आती है, जब बात लैला-मजनू की आती है, जब बात सलीम-अनारकली की आती है, तो प्रेम अंधा हो जाता है क्योंकि इन लोगों ने भी एक दूसरे के लिए प्रेम होने के कारण अपनी जान दी थी। परंतु जब बात सनातन धर्म की आती है तो प्रेम में भी अंधविश्वास नजर आता है। बड़े तर्कहीन तर्क दे देते थे अंग्रेज, और हम उन्हें बिना सबूतों के आधार पर, बिना पढ़े मान भी लेते थे, क्योंकि गुलामी की आदत तो हम में ही थी ना!

ऊपर दिए गए तर्कों में क्या कहीं भी ऐसा लगा की स्त्री को जबरदस्ती उसके पति की चिता के साथ जलाया जाता था, अपितु वह स्वयं की इच्छा से यह कार्य करती थीं।

परंतु इन वामपंथी इतिहासकारों और लेखकों द्वारा हमारे वेदों में जो लिखा है हमारे ग्रंथों में लिखा है वह सब उलट-पुलट करके हमें बताया गया जबकि लिखा कुछ और ही था।

हमने भी यह जानने की कभी कोशिश ही नहीं करी कि आखिर ऐसा क्यों होता था। इसके पीछे का कारण क्या था। हमारे सनातन

धर्म में तो ऐसा कहीं पर भी नहीं लिखा अपितु यहां तो नारियों का सम्मान करना ही सिखाया गया है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।

(मनुस्मृति 3/56)

अर्थात: जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं और जहाँ स्त्रियों की पूजा नहीं होती है, उनका सम्मान नहीं होता है वहाँ किये गये समस्त अच्छे कर्म निष्फल हो जाते हैं।

अब देखते हैं कि **ऋग्वेद** में विधवा नारी के बारे में क्या लिखा है:

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि ।

हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सम्बभूथ ।। 8 ।।

(ऋग्वेद, 10 वा मंडल, सूक्त 18)

अर्थात: (पति की मृत्यु के बाद उसकी विधवा पत्नी से) उठ! तुझे संसार वापस बुला रहा है, तू किसका पक्ष ले रही है जो मृत शरीर है। जिसने इस संसार में तेरा हाथ पकड़ा था और आकर्षित करता था वह मुक्त होकर चला गया।

सनातन धर्म के किसी भी ग्रंथ में इस बात का उल्लेख नहीं मिलता है कि स्त्री को उसके पति की मृत्यु के बाद उसकी चिता के साथ

जला देना चाहिए। ना ही भारत के पुराने इतिहास में ऐसी घटनाएं हुई हैं। आप इतिहास के पन्नों को टटोल कर देख सकते हैं बशर्ते वह वामपंथी इतिहास ना हो। यह तो अंग्रेजों द्वारा बोला गया एक सफेद झूठ था जिसे भारत के कुछ ठेकेदारों ने बिना सोचे समझे सनातन धर्म को बदनाम करने के लक्ष्य के साथ अपना लिया।

सनातन धर्म सदैव नारियों का सम्मान करना सिखाता है कोई भी शुभ कार्य बिना स्त्रियों के संपूर्ण नहीं होता और यही बात उन अंग्रेजों को हजम नहीं हुई।

इसीलिए उन्होंने हमारी परंपराओं के साथ विक्षेप कर भारत के लोगों को बताया और उनके मन में सनातन धर्म के प्रति हीन भावना उत्पन्न की।

जिन अंग्रेजों के यहां **Witch Craft Act, 1542** जैसे कानून रहे हैं, जिसके तहत किसी भी नारी को बिना सोचे समझे, चुड़ैल घोषित करके जिंदा जला दिया जाता था। जिन अंग्रेजों के यहां नारियों को कुर्सी मेज की तरह वस्तु समझा जाता था।

प्लेटो जैसे महान दार्शनिकों का कहना था कि नारियों में आत्मा नहीं होती इसीलिए अंग्रेजों के यहां नारियों को मताधिकार नहीं था, न्यायालय में उनकी गवाही नहीं सुनी जाती थी।

उस देश के नागरिक भारत को यह ज्ञान देते हैं कि भारत की नारियां शोषित हैं।

जिस समय अंग्रेजों के यहां यह कानून थे, उस समय भारत में रानी अहिल्याबाई, रानी चेन्नम्मा, रानी दुर्गावती जैसी महान रानियाँ रही हैं, जिन्होंने अपने-अपने राज्यों में शासन तक किया है, उस भारत की नारियां कभी पतित नहीं हो सकतीं।

रामायण, महाभारत, गीता, मनुस्मृति कहीं भी इस प्रथा का उल्लेख नहीं मिला, ना तो दशरथ महाराज के पश्चात माँ कौशल्या, सुमित्रा, कैकई ने सती का अवलम्ब किया, ना ही महाभारत में सत्यवती और कुंती ने इसको अपनाया। अपितु वे राजमाता बन कर गौरव से जीवित रही।

इतना सब जानने के बाद यह कहना अनुचित होगा कि सनातन धर्म में स्त्रियों का शोषण होता है।

पर मन में एक कौतूहल उठता है कि आखिर सती प्रथा का वास्तविक रूप क्या था?

सती शब्द संस्कृत के "सत" शब्द से पैदा हुआ है। जिसका अर्थ है पवित्र। सती प्रथा का नाम माता सती के द्वारा योगाग्नि में स्वयं को भस्म कर पार्वती के रूप में प्राकट्य की घटना से जुड़ा हुआ है। सबसे पहली बात ये की सती ने योगाग्नि में आत्माहुति किसी के दबाव में नहीं दिया था। अपितु स्वेच्छा से दिया था।

सती शब्द भी सत्यीकरण यानि पवित्रीकरण से ही निकला है, और पवित्र करने की प्रक्रिया अग्नि की है। इस शब्द विशेष का किसी विधवा के पति के शव के साथ दाह से कोई संबंध नहीं था।

नवरात्रि के समय जब माता अम्बे जी की आरती होती है तो उस पर ध्यान दीजियेगा। उस आरती की कुछ पंक्तियाँ आपको दिखाता हूँ :-

सब की बिगड़ी बनाने वाली, लाज बचाने वाली,

सतिओं के सत को संवारती,

ओ मैया हम सब उतारें तेरी आरती।।

यहाँ **"सतिओं के सत को संवारती"** पंक्ति का अर्थ है कि जब किसी की पत्नी अपने पति के मृत्यु के बाद सती होती थी तो माता अम्बे उसकी रक्षा करती थीं। माता अम्बे उनकी सात्विकता को बचाए रखती थीं तथा उनकी रक्षा करती थीं। अब अगर स्त्री को जिंदा जला दिया जाता था तो उसकी रक्षा का सवाल ही नहीं उठता! उसकी सात्विकता को कोई कैसे बचाएगा जब वह जिंदा ही नहीं रहती थी। यहाँ विरोधाभास उत्पन्न होता है!

माता अम्बे जी की यह आरती बहुत सालों से बोली जा रही है, अर्थात उस समय महिलाओं को सती के रूप में जलाया नहीं जाता था। वह मंदिर में रहा करतीं थीं जहाँ उनकी पूजा की जाती थी। और माता अम्बे स्वयं उनकी रक्षा करती थीं।

गुप्तकाल में 510 ई. के दौरान सती प्रथा का पहला अभिलेखीय साक्ष्य देखा गया है। इस अभिलेख में महाराजा भानुगुप्त का वर्णन किया गया है जिनके साथ युद्ध में गोपराज भी

मौजूद थे। गोपराज वीर गति को प्राप्त हुए जिसके बाद उनकी पत्नी ने सती होकर अपने प्राण त्याग दिए थे। परन्तु यह किसी दबाव में नहीं अपितु स्वेच्छा का विषय था।

सनातन धर्म किसी को बाधित नहीं करता, अपितु सनातन में सदैव स्त्रियों को ऊपर का दर्जा दिया गया है। और जो आचरण स्त्रियों के लिए बताया गया है, वही आचरण पुरुषों को करने के लिए भी कहा है। तुलसीदास जी कहते हैं कि :-

एक नारिब्रतरत सब झारी।

ते मन बच क्रम पतिहितकारी।।

(उत्तर कांड, रामचरितमानस)

अर्थात: यहाँ तुलसीदास जी रामराज्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि राम राज्य में सभी पुरुष और स्त्री सामान थे, अर्थात पुरुष भी एक नारी व्रत का पालन करते थे। यहाँ पुरुष के विशेषाधिकारों को न मानकर दोनों को समान रूप से एक ही व्रत पालने का आदेश दिया है।

तो क्या अब भी वामपंथी सनातन धर्म पर सवाल उठाएंगे?

जैसा आपने विभिन्न तस्वीरों में देखा होगा, वो गलत रूप है, जो हमें आज तक बताया गया, जिसके कारण अनेकों स्त्रियों की जान गई। भारत के कई आदिवासी इलाकों में (जैसे गोंड समुदाय के लोग, भील समुदाय के लोग) सती प्रथा है किंतु इसका प्रकार देखें!

वहाँ विधवा स्त्री संस्कृत में मंत्र पढ़ती हुई पति की चिता के चक्कर काटती है और हर चक्कर में एक प्रश्न अपने हर संबंधी से करती है जैसे पुत्र, पुत्री, भाई, समाज, पुरोहित आदि और प्रश्न यह होता है कि क्या आप मेरा भरण पोषण करेंगे, अब मैं विधवा हूँ।

अब यहां कुछ लोग कहेंगे कि आज स्त्री आत्मनिर्भर है उसे अपने भरण पोषण के लिए किसी पर निर्भर रहने की क्या आवश्यकता?

पर हमें एक बात ध्यान रखनी चाहिए कि आत्मनिर्भरता आध्यात्मिक रूप से सम्भव है परंतु भौतिक रूप से हमें अपने परिजनों पर निर्भर रहना ही पड़ता है। आत्मनिर्भरता का अर्थ यह नहीं कि हम अपने समाज को छोड़कर अपने अंदर निवास करें, हमें समाज में तो रहना ही पड़ेगा। यदि कोई हाँ कहता है तो वह प्रदक्षिणा रोक देती है, किंतु जब कोई सहमत नहीं होता तब वह 7 प्रदक्षिणा कर के गाँव के मंदिर जाती है और वहीं ईश्वर चरण में जीवन यापन करती है और इस स्त्री को सती कहते हैं। यही नहीं जब सारा समाज मन्दिर आता है तब उस स्त्री की भी चरण वंदना करता है और उसे देवी मानकर सम्मान भी दिया जाता है।

यह है वास्तविक सती प्रथा का सत्य।

-------●-------

अध्याय 2
घूंघट प्रथा या सर ढंकना: सत्य क्या है?

सर ढंकने की प्रथा थी या घूंघट करने की, दोनों में अन्तर है?

क्या इस प्रथा के पीछे अंधविश्वास था या कोई वैज्ञानिक कारण?

अगर वैज्ञानिक कारण था, तो सनातन धर्म को बदनाम क्यों किया गया?

सर ढंके हुए महिला और पुरुष

जिस प्रकार सती प्रथा के वास्तविक रूप को छिपाकर उसको गलत ढंग से प्रस्तुत किया गया था, ठीक उसी प्रकार महिलाओं द्वारा सिर ढकें जाने की आदत को भी गलत तरीके से दिखाया गया और उसे घूंघट प्रथा का नाम दे दिया गया।

जैसा कि आप जानते हैं कि सनातन धर्म सत्य है जो अनंत काल से चलता आ रहा है और अनंत काल तक चलता रहेगा। सत्य के साथ-साथ सनातन धर्म वैज्ञानिक भी है इसीलिए इसे वैदिक धर्म भी कहा जाता है, जहाँ प्रत्येक कार्य के पीछे कुछ ना कुछ वैज्ञानिक कारण अवश्य होता है।

और इस वैज्ञानिक कारण को समझने के लिए अत्यंत सूक्ष्म और तीव्र बुद्धि का होना आवश्यक है जो कि वामपंथी इतिहासकारों और लेखकों के पास नहीं थी। इसीलिए उन्होंने सनातन धर्म को मिथ्या और अंधविश्वास बताने के लिए हर वह प्रयास किया जो वह कर सकते थे।

ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार सती प्रथा को बदनाम किया गया था, सिर ढंकने की आदत को भी बदनाम किया गया। मैं हर बार आदत इसीलिए बोल रहा हूँ, क्योंकि यह सिर्फ स्त्रियों की ही नहीं अपितु पुरुषों की भी आदत थी!

क्योंकि सिर ढंकने और चेहरा छिपाने, दोनों ने गहरा अंतर है जिसे वामपंथी इतिहासकार या कहा जाए अंग्रेजी इतिहासकार नहीं समझ पाए। और उन्हें लगा कि सनातन धर्म में स्त्रियों को पुरुष के सामने अपना चेहरा दिखाने तक की भी आज्ञा नहीं है।

परंतु महिलाओं द्वारा अपना चेहरा सिर्फ अंग्रेजी और मुगल आक्रमणकारियों से ही छुपाया जाता था क्योंकि वह उन्हें कुदृष्टि से

देखते थे। यह भी महिलाओं द्वारा अपना मान बचाने के लिए किया गया एक उपाय मात्र था यह कोई धार्मिक आज्ञा नहीं थी।

परंतु देश के, धर्म के सौदागरों ने बिना सोचे समझे विदेशी इतिहास पर ऐसे विश्वास किया, जैसे वह इतिहास उनके किसी रिश्तेदार ने लिखा है।

सिर ढंकना और घूंघट करना दोनों में गहरा अंतर है इस बात को हमें भी समझना चाहिए!

अगर सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से देखा जाए तो अपने से बड़ों के सम्मान में सर ढंका जाता था, और यह कार्य सिर्फ महिलाओं द्वारा ही नहीं अपितु पुरुषों द्वारा भी किया जाता था।

जब भी कोई स्त्री या पुरुष अपने से बड़ों के सामने जाते थे तो अपना सर ढंक लेते थे। जैसे महिलाएं सर पर पल्लू रख लेती थीं और पुरुष सर पर पगड़ी बांध लेते थे। ऐसा सम्मान की दृष्टि से किया जाता था ना कि महिलाओं का शोषण करने हेतु।

मैं फिर वही बात दोहराता हूँ कि सनातन स्त्रियों का सम्मान करना सिखाता है, ना कि शोषण करना! परंतु धर्म के सौदागरों ने अपने फायदे के लिए सब कुछ गलत ढंग से प्रस्तुत किया और सनातन धर्म को बदनाम किया। ये तो हमारे धर्म की स्त्रियों की महानता है कि उन्होंने आज भी "सर ढंकने" की सभ्यता को अपनाया हुआ है ना कि "चेहरा ढंकने" की प्रथा को!

ऐसी स्त्रियों को शत-शत नमन !

किसी भी परम्परा का सही तरीके से निर्वहन करना सिर्फ महिलाओं द्वारा ही सम्भव है। अगर महिलाओं ने कभी पर्दा किया भी था तो स्वयं की मान मर्यादा को बचाने के लिए किया था, क्योंकि विदेशी आक्रांता उनको कुदृष्टि से देखते थे। नहीं तो भारत में ऐसी परम्परा कहीं देखने को नहीं मिलती।

क्या आपने कभी राम दरबार में सीता जी को घूंघट में देखा है!

अब वैज्ञानिक दृष्टिकोण को समझते हैं!

वैदिक धर्म अर्थात सनातन धर्म की माने तो हमारे शरीर में दस द्वार होते हैं: दो नासिका में, दो आंख में, दो कान में, एक मुंह, दो गुप्तांग और सिर के मध्य होता है दसवां द्वार। इसी को ब्रह्मरन्ध्र कहा जाता है।

7. सहस्त्रार चक्र
6. ज्ञान चक्र
5. विशुद्ध चक्र
4. अनाहत चक्र
3. मणिपूर चक्र
2. स्वाधिष्ठान चक्र
1. मूलाधार चक्र
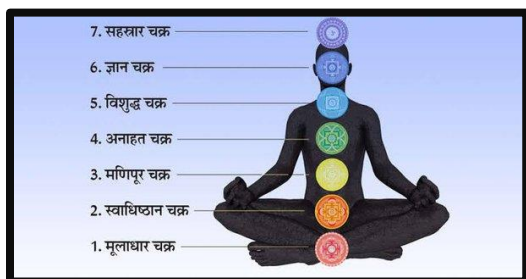
शरीर में उपस्थित सात चक्र

इसी दसवें द्वार के माध्यम से ही परमात्मा के साक्षात्कार हो सकते हैं। इसीलिए पूजा करते वक्त या मंदिर में प्रार्थना करते वक्त सिर को ढंकने से मन एकाग्र होता है और परमात्मा में ध्यान लगा रहता है।

ब्रह्मरन्ध्र योग में एक तकनीकी शब्द है, जो मस्तिष्क के सबसे ऊपरी हिस्से में एक छिद्र को कहा जाता है। यदि मृत्यु के समय प्राण वायु इसके माध्यम से गुजरती है, तो इसे ब्रह्म की ओर ले जाने वाला एक माध्यम कहा जा सकता है।

इस तथ्य को **कठ उपनिषद** में सामने लाया गया है, और कहा गया है कि: -

शतं चैका च हृदयस्य नाड्य स्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका ।

तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङ्न्या उत्क्रमणे भवन्ति ।।16।।

(कठ उपनिषद अध्याय 2, वल्ली 3)

अर्थात: इस हृदय से एक सौ एक नाड़ियाँ हैं। उनमें से एक मूर्धा का भेदन कर के बाहर को निकली हुई है। उसके द्वारा ऊर्ध्व अर्थात ऊपर की ओर जाने वाला पुरुष अमरत्व को प्राप्त होता है। शेष विभिन्न गति युक्त नाड़ियाँ प्राणोंत्सर्ग हेतु होती हैं।

मनुष्य शरीर की तीन नाड़ियाँ

ध्यान बिन्दु उपनिषद में कहा है-

मस्तकेमणिवद्भिन्नं यो जानाति स योगवित्।

तप्तचामीकराकारं तडिल्लेखेव विस्फुरत् ।।46।।

अर्थात: मस्तक में जो मणि के समान प्रकाश है, जो उसे जानते हैं वहीं योगी है। तप्त स्वर्ण के समान विद्युत धारा-सी प्रकाशित वह मणि, अग्नि स्थान से चार अंगुल ऊर्ध्व और मेढ़ स्थान के नीचे है।

दर्शन उपनिषद में कुंडलिनी योग के बारे में बताया गया है। इसमें आत्म ज्ञान को योग का अंतिम लक्ष्य बताया गया है, तथा परमात्मा के साथ आत्मा को जोड़ना भी योग का उद्देश्य बताया गया है। ब्रह्मरंध्र में प्राण को जीतकर एक निपुण व्यक्ति इसके माध्यम से अमरता प्राप्त कर सकता है।

कहने का तात्पर्य है कि सिर के ऊपरी तले अर्थात ब्रह्मरन्ध्र को शास्त्रों में शरीर का महत्त्वपूर्ण हिस्सा बताया गया है, क्योंकि यह शरीर के प्राणों को नियंत्रित करता है। परंतु पर्यावरण के मामूली परिवर्तन से होने वाले दुष्प्रभाव इसी भाग से शरीर के अंदर आते हैं। इसीलिए सिर के ढंका रहने पर हम नकारात्मक ऊर्जा से बच सकते हैं।

इसके अलावा आकाश में रहने वाली बहुत सारी विद्युतीय तरंगें खुले सिर वाले व्यक्तियों के अंदर जल्दी प्रवेश करती हैं जिसके परिणामस्वरूप क्रोध, सिर दर्द, आंखों की कमजोरी, आदि कई रोग

मनुष्य को घेर लेते हैं। परंतु सिर के ढंके रहने पर हम इन सभी रोगों से बच सकते हैं।

तो यह था वैज्ञानिक कारण! सनातन धर्म पूर्ण रूप से वैज्ञानिक है, सनातन में सभी जगह विज्ञान विद्यमान है। और यही वजह रही कि कुछ इतिहासकार हमेशा सनातन के विरोध में लिखते आए हैं। जिन्होंने सच को कभी सामने आने ही नहीं दिया।

अगर घूंघट प्रथा की ही बात करें तो सनातन के किसी ग्रंथ में ऐसा उल्लेख नहीं मिलता की चेहरा ढंका हुआ होना चाहिए।

यह प्रथा नीच बलात्कारी मुग़ल आक्रमणकारियों के भय से माँ पद्मिनी के जौहर के पश्चात भूखे भेड़ियों की कुदृष्टि से अपनी सुंदरता को छिपा कर रखने व अपने शील मर्यादा की रक्षा करने हेतु महिलाओं द्वारा किया गया उपाय मात्र था।

यह सनातन भारत की देन नहीं है। सर ढंकना और घूंघट रखना इनमें अंतर है!

सर ढंकने के पीछे वैज्ञानिक, सामाजिक व आध्यात्मिक सभी प्रकार के हित निहित है जिसका पालन स्त्री और पुरुष दोनों श्रद्धा से करें!

-------●-------

अध्याय 3
कन्या दान या दहेज प्रथा?

जिस सनातन में सदैव संतोष करना सिखाया जाता है, उस सनातन धर्म में मान्यता रखने वाले लोभी कैसे हो सकते हैं?

जिस सनातन धर्म में स्त्री का सम्मान सर्वोपरि है, उस सनातन में स्त्री को लोभ के चक्कर में प्रताड़ित कैसे किया जा सकता है?

और अगर यह लोभ है, तो वह लोभ आया कहाँ से? यह हमें सोचना चाहिए।

हमें सोचना चाहिए कि जिस सनातन संस्कृति में **"सर्वे भवन्तु सुखिनः"** कहा गया, अर्थात ऐसा कार्य करना चाहिए जिससे सभी सुखी रहें, उस सनातन संस्कृति में कुछ धनराशि के लालच में किसी स्त्री को प्रताड़ित कैसे किया जा सकता है।

जिस सनातन संस्कृति में कहा गया कि **"वसुधैव कुटुंबकम"** अर्थात समस्त विश्व एक परिवार है उस सनातन संस्कृति के परिवार का एक अंग किसी दूसरे अंग को कष्ट कैसे दे सकता है। जिस सनातन संस्कृति में पत्नी को **"अर्धांगिनी"** कहा गया, उस सनातन संस्कृति में उसका पति उसे धनराशि के लालच में कष्ट कैसे दे सकता है।

जिस सनातन संस्कृति में लोभ को नर्क का द्वार बताया गया है अर्थात सनातन संस्कृति में लोभ करना एक अपराध है, उस सनातन संस्कृति के मानने वाले किसी से धन का लालच क्यों रखेंगे?

गीता में कहा गया है कि: -

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।

कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ।।

(अध्याय 16, श्लोक 21)

अर्थात: काम, क्रोध तथा लोभ- ये तीन प्रकार के नरक के द्वार आत्मा का नाश करने वाले अर्थात् उसको अधोगति में ले जाने वाले हैं। अतएव इन तीनों को त्याग देना चाहिए।

अंग्रेजों द्वारा बनाई गई इस व्यवस्था में, हमारे दिमाग में हमारी ही संस्कृति के बारे में, हमारी ही परंपराओं के बारे में इतना गलत भर दिया गया कि आज अगर हमें कोई सच बताए भी, तो हमें उस पर विश्वास नहीं होगा! ऐसा इसीलिए कि, बहुत ही सोच विचार करके मैकाले ने हमारी शिक्षा पद्धति में वह सारी चीजें डाल दी जो सनातन को बदनाम करती थीं और अंग्रेजों की महानता का बखान करती थीं।

टीवी, सिनेमा, मनोरंजन, शिक्षा आदि माध्यमों से धीरे-धीरे हमारे मन मस्तिष्क में यह बात बैठा दी गई कि सनातन धर्म में बहुत कुरीतियाँ थीं।

और कहीं ना कहीं गलती हमारी भी रही है कि हमने उन लोगों की बातों पर विश्वास किया जिन्होंने हम पर शासन किया था, जिन्होंने हमारा शोषण किया था, जिन्होंने भारत को लूटा था। उन लोगों की बातों पर हमें विश्वास नहीं करना चाहिए था जिन लोगों ने व्यापारी बनकर हमारा विश्वास तोड़ा था।

भारत के लोग उस इतिहास पर ज्यादा विश्वास रखते हैं जो अंग्रेजों ने लिखा है, यह जानते हुए भी कि उन्होंने हमारा इतिहास मिटाने की कोशिश की।

दहेज, जिसके बारे में कहा गया कि सनातन धर्म में वधू पक्ष के लोग वर पक्ष को कुछ धनराशि देते हैं और अगर वर पक्ष को वह धनराशि नहीं मिलती तो वे उस स्त्री के साथ में दुराचार करते हैं, उसका शोषण करते हैं।
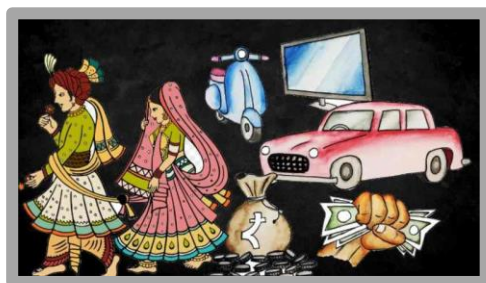
दहेज के लिए लालच, सनातन की देन नहीं

लेकिन क्या यही वास्तविकता है?

प्राचीन काल में कन्या दान करने वाले माता पिता प्रेम वश कन्या को विवाह में कन्या की आवश्यकताओं की सामग्री प्रदान करते थे, जिससे कन्या को ससुराल में प्रवेश करते ही कुछ माँगना ना पड़े और ससुराल पक्ष के लोग भी उसकी पसंद नापसंद समझ पाएं।

कन्या के साथ में गौ, बछड़ा या उसकी कोई प्रिय सखी उसके साथ भेज दी जाती थी जिससे उसे नए घर में नए लोगों के बीच अपरिचित रहने का अधिक आभास ना हो।

साथ ही ससुराल वालों को भेंट स्वरूप कुछ वस्तुएं, ऐच्छिक रूप से कन्या पक्ष द्वारा भेंट की जाती थीं। इसमें स्वाभिमान, ममत्व और सहजता का शुद्ध भाव था ना की माँग कर नियमबद्धता से किसी का शोषण करने का भाव।

भारतवर्ष में सनातन धर्म में **"दान प्रथा"** अस्तित्व में थी न कि दहेज प्रथा। सनातन धर्म के किसी भी ग्रंथ में, किसी भी पुस्तक में, किसी भी उपनिषद में दहेज शब्द का प्रयोग नहीं मिलता।

जब यह शब्द ही सनातन सभ्यता में नहीं है तो मित्रों यह प्रथा कब और कैसे अस्तित्व में आई? कैसे लोग अपनी कन्या रत्न के साथ वरपक्ष द्वारा मुंह माँगी धन-संपत्ति देकर विदा करने लगे?

इसका भी हम विश्लेषण करने का प्रयास करते हैं!

बात मध्य युगीन काल की है जब विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा दिन दहाड़े कन्याओं को उठा कर ले जाने की घटनाएं सामान्य हो रहीं थी।

महिलाओं, कन्याओं पर अत्याचार, अनाचार कर उनका बलात्कार जैसी निंदनीय घटनाएँ प्रतिदिन हो रही थीं। तब लोगों ने इस अनर्थ से बचने के लिए, अपने कुल की लाज बचाने के लिए कन्याओं को जैसे तैसे विदा कर देने का उपाय खोज निकाला।

इस के लिए लोगों ने कन्या की आयु तक का ध्यान करना छोड़ दिया इस कारण बाल विवाह भी होने लगे। और अवयस्क वर होने के कारण उसकी आजीविका, व्यापार व्यवसाय की व्यवस्था कर देने का भी वचन देने से लोग नहीं चूक रहे थे।

वे धन देकर कन्या को किसी भी तरह ससुराल पहुंचाकर, कन्यादान के ऋण से शीघ्रातिशीघ्र मुक्त होना चाहते थे।

इसी विवशता का लाभ कुछ लोभी वर पक्षों ने लेना आरम्भ कर दिया और मुंह माँगी राशि, धन, संपत्ति, जमीन आदि की मांग करने लगे। तत्कालीन विवशता का लाभ लेने की संधि साधुता की आदत आगे चल कर एक भयावह कुप्रथा बनकर रह गई।

आज विवशता नहीं रही, सामाजिक व वैचारिक स्वतंत्रता आज सभी को प्राप्त है, सभी वर्ग सुरक्षित हैं फिर भी हम कन्यादान नहीं, दहेज देकर कन्या को विदा करने में विश्वास रख रहे हैं। और वरपक्ष भी राजा दशरथ की भांति सर झुकाकर दान लेने में आस्था नहीं

रख रहे, अपितु सर उठाकर मुंह खोलकर मूल्यवान वस्तुओं की मांग कर कन्या पक्ष का शोषण कर रहे हैं।

क्यों आज विवाह जैसी पवित्र बंधन को आदान-प्रदान व व्यापारिक संधि बना देने पर तुले हैं हम? क्यों शोषण, अत्याचार, अपमान, हत्या, जैसे अमानवीय कृत्य कर सनातन धर्म को मलिन कर रहे हैं? क्यों हम अपने आराध्यों को पूजने के साथ-साथ उनके सत्कर्मों व गुणों का पालन नहीं कर पा रहे? क्या लालच ने हमको इतना घेर लिया है कि आज हमें अपने धर्म के मलिन होने की भी चिंता नहीं है?

हमें अपनी इस विवशता को किनारे कर, अपने धर्म की पहले सोच कर फिर से वही आचरण अपनाना होगा जो हमारे पूर्वजों ने अपनाया था।

अन्यथा सनातन धर्म पर हमेशा से प्रहार होते आए हैं और होते रहेंगे। यह तभी रुक सकेंगे जब हम अपनी आदत सुधार लेंगे। अपनी सभ्यता, अपनी संस्कृति की रक्षा स्वयं करेंगे।

-------●-------

अध्याय 4
विधवा स्त्री द्वारा सफेद कपड़े पहनना

क्या कभी भारतीय परंपराओं को समझना चाहा?

क्या भारतीय परंपराओं के असली मायने को समझने की कोशिश की?

क्या कभी सनातन धर्म के पीछे निहित भावनाओं को महसूस करना चाहा?

मैं एक बार फिर से आप का ध्यान उसी बात की ओर केंद्रित करना चाहता हूँ कि सनातन धर्म में सदैव स्त्रियों का सम्मान किया जाता है। स्त्रियों को हमेशा ही उच्च कोटि का दर्जा दिया गया है।

सनातन धर्म में स्त्रियों पर किसी भी प्रकार की पाबंदी हो, ऐसा कोई भी जिक्र हमारे वैदिक ग्रंथों में नहीं मिलता। कुछ नियम अवश्य बनाए गए हैं जिनका पालन सिर्फ स्त्रियों को ही नहीं अपितु पुरुषों को भी करना पड़ता था और यह नियम अंधविश्वास नहीं अपितु संस्कार वान होने का एक तरीका था।

हजारों वर्षों की पराधीनता के बाद भारत ने अपनी संस्कृति खोई है, अपना इतिहास खोया है। आज भारतीय परंपरा मात्र अंधविश्वास

बनकर रह गई हैं, क्योंकि लोग उन्हें समझना नहीं चाहते, उसके पीछे छिपे विज्ञान को जानना नहीं चाहते, उनके पीछे निहित भावनाओं को महसूस नहीं करना चाहते।

परंतु जब सनातन धर्म पर प्रश्न चिन्ह लगाने की बारी आएगी तो सर्वप्रथम आगे आएंगे, क्योंकि यह उनकी अभिव्यक्ति की आजादी बन जाती है।

एक बात अवश्य ध्यान रखनी चाहिए कि जब-जब प्रश्न उठता है, उसका उत्तर मिलता है। वही उत्तर आज मैं देना चाहता हूँ, वह भी अभिव्यक्ति की आजादी के तहत।

अंग्रेजों ने तलवार के साथ-साथ कलम से भी प्रहार किया था। अंग्रेजों ने हमारे धार्मिक ग्रंथों में मैक्स मूलर की सहायता से विक्षेप किया और वही विक्षिप्त धार्मिक ग्रंथ भारत के नागरिकों को पढ़ा कर, उनके मन में अपने ही धार्मिक ग्रंथों के प्रति घृणा भर दी। और इसी बात का हवाला देकर सभी गुरुकुलों को बंद करा दिया। और तो और भारत में भी दोगले लोगों की कमी नहीं थी, जिन्हें अपने देश के लोगों से ज्यादा विदेशी लोगों पर विश्वास था। यही कारण बना भारतीय संस्कृति और सभ्यता के पतन का।

अंग्रेजों द्वारा दसों दिशाओं से प्रहार किया गया। अंग्रेजों द्वारा यह झूठ फैलाया गया कि सनातन संस्कृति में और प्राचीन भारत में स्त्रियां अपने पति की मृत्यु के पश्चात सफेद कपड़े पहनती थीं, और

समाज उन्हें ऐसा करने के लिए मजबूर करता था। जिससे कि उनका शोषण होता था।

परंतु यह पूर्णतः असत्य है। परंतु यह विचार लोगों के मन में आये कहाँ से? इस पर विचार करना जरूरी है!

गाँव के बुजुर्ग पुरुषों द्वारा सफेद कपड़े धारण करना

ऊपर की तस्वीर में आप देख सकते हैं कि पुरुष भी सफेद रंग पहनते थे। और अगर सनातन के धार्मिक ग्रंथों को देखा जाए तो ऐसा जिक्र कहीं भी नहीं मिलता कि स्त्रियों को पति की मृत्यु के पश्चात सफेद कपड़े पहनने ही चाहिए। कुछ नियम अवश्य बनाए गए थे जो स्त्री और पुरुष दोनों के लिए थे। आपने अपने घर में अपने बुजुर्गों को सफेद कपड़ों में देखा होगा चाहे वह आपके दादा जी हों या आपकी दादी जी हों। परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि उनका शोषण किया जा रहा है, अपितु यह तो उनकी सात्विकता को दर्शाता है। और उन्हें ऐसा करने के लिए किसी ने मजबूर भी नहीं किया, बल्कि यह रंग तो उन्होंने अपनी इच्छा के अनुसार अपनाया था।

अब प्रश्न यह उठता है कि सात्विकता को दर्शाने के लिए सफेद रंग को ही क्यों चुना गया, कोई अन्य रंग क्यों नहीं?

अब बुजुर्गों द्वारा करे गए कार्यों के पीछे कुछ ना कुछ रहस्य तो अवश्य होता है। उनके द्वारा जो बातें बताई जाती हैं वह पूर्णतया सत्य होती हैं और महत्वपूर्ण भी होती हैं।

सर्वप्रथम हम सफेद रंग का महत्व जानने की कोशिश करते हैं, जिसके कारण से बुजुर्गों ने उसे अपनाया था।

अगर वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो सफेद रंग एक तटस्थ रंग है जो सात रंगों के मिश्रण से बना है। जब सात तरह के रंग एक साथ मिलते हैं तो वह न्यूट्रल हो जाते हैं अर्थात तटस्थ हो जाते हैं और सफेद रंग में परिवर्तित हो जाते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि संसार के सभी रंगों का अनुभव करने के बाद एक बुजुर्ग व्यक्ति तटस्थ हो जाता है अर्थात अनुभवी हो जाता है, अब उसे अन्य किसी सांसारिक रंग की इच्छा नहीं होती इसीलिए वह सफेद वस्त्र धारण करता है।

दूसरा कारण यह हो सकता है कि सफेद रंग का स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है जिसकी आवश्यकता बुजुर्गों को अत्यधिक होती है इसीलिए उन्होंने सफेद वस्त्र धारण किए। सफेद वस्त्र पहनने से ताजगी और शरीर में स्फूर्ति बनी रहती है। सफेद वस्त्र पहनने से शरीर में एक नई ऊर्जा का संचालन होता है और इसी वजह से हमारे वृद्ध जनों द्वारा सफेद वस्त्र अपनाए गए।

सफेद रंग पवित्र होता है अर्थात शुद्ध होता है जो किसी व्यक्ति की सादगी को दर्शाता है। सफेद रंग शांति का भी प्रतीक होता है। आपने अकसर देखा होगा कि वृद्ध लोगों का स्वभाव अत्यंत कोमल और

निश्छल होता है। उनके स्वभाव में एक अलग ही प्रेम झलकता है। अब आप मानें या ना मानें, यह सफेद वस्त्रों के कारण ही होता है।

सफेद रंग के प्रभाव के कारण मन एकाग्र रहता है। आपने अकसर देखा होगा कि विद्यालय में जाने वाले छात्र-छात्राएं सफेद रंग के वेश पहनते हैं ऐसा इसीलिए कि उनका मन पढ़ाई में एकाग्र रहे। ठीक उसी प्रकार बुजुर्गों द्वारा भी सफेद वस्त्र इसीलिए पहने जाते हैं कि उनका मन भी ईश्वर भक्ति में एकाग्र रहे।

सफेद वस्त्र शोक का नहीं अपितु ज्ञान का प्रतीक होता है जिसे माता सरस्वती स्वयं धारण करती हैं। जब कोई व्यक्ति बुजुर्ग हो जाता है तो उसे संसार के रंगों का मोह नहीं रहता, जिसके कारण उसे एक ज्ञान की प्राप्ति होती है कि सांसारिक रंगों में कुछ नहीं रखा है, जो कुछ है वह ईश्वर है। इसी ज्ञान की प्राप्ति के लिए बुजुर्गों द्वारा सफेद वस्त्र पहने जाते थे।

सफेद रंग सर्व गुण संपन्न होता है जिसे छात्र-छात्राएं पुरुष महिलाएं बुजुर्ग लोग कोई भी पहन सकता है। यह बाध्य नहीं है कि सफेद वस्त्रों को केवल वृद्ध लोग ही पहन सकते हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि जब सफेद रंग के इतने महत्व हैं तो फिर यह चलन कहाँ से शुरू हुआ कि समाज विधवा स्त्री को सफेद वस्त्र पहनने के लिए बाधित करने लगा?

विधवा द्वारा सफेद कपड़े पहनना: एक झूठ

एक काल्पनिक उदाहरण को देखते हैं। एक घर में चार लोग रहते हैं:- रमेश, उसके माता-पिता और उसकी पत्नी। अब होता यह है कि किसी दुर्घटना में रमेश के पिता की मृत्यु हो जाती है और उसकी माता भी अब वृद्ध हो चुकी हैं, तो उन्होंने भी सफेद वस्त्र धारण कर लिए (अपनी इच्छा के अनुसार)। परंतु जब रमेश उनसे यह बात पूछता है कि उन्होंने सफेद वस्त्र क्यों पहने हैं, तो उसकी माता उसका उत्तर नहीं दे पातीं। तो रमेश ने मन ही मन यह विचार बना लिया की पिता की मृत्यु के बाद माता ने सफेद वस्त्र धारण किये हैं और रमेश की पत्नी सोचती है कि जब पति की मृत्यु हो जाती है तो उसकी पत्नी सफेद वस्त्र धारण करती है। यही बात उन्होंने अपने बच्चों को बताई, उनके बच्चों ने अपने बच्चों को बताई, और यही क्रम लगातार चलता रहा।

जैसे-जैसे यह क्रम आगे बढ़ता गया वैसे-वैसे ही इस बात का प्रचार होता गया। और रही सही कसर अंग्रेजों ने पूरी कर दी कि सनातन संस्कृति में विधवाओं का शोषण होता है।

परंतु रमेश की माता ने सफेद वस्त्र धारण किए, इसका कारण यह था कि वह सादगी पूर्ण जीवन जीना चाहती थीं। उन्हें अब संसार के किसी भी रंग में कोई दिलचस्पी नहीं रही थी। इसी कारण उन्होंने सफेद वस्त्र पहने। क्योंकि प्राचीन काल में महिलाएं अपने पति को ही सब कुछ मानती थीं, और जब वही नहीं रहा तो उनके जीवन में बाकी सभी रंग फीके हो जाते थे।

यह शोषण नहीं अपितु सम्मान था जो भारतीय महिला द्वारा अपने पति को दिया जाता था, और यही सम्मान पुरुष भी अपनी पत्नी को देते थे।

ऐसा किसी धर्म ग्रंथ में नहीं लिखा है, यह तो प्रेम पूर्वक किया जाता था ना कि शोषण करने की दृष्टि से। परंतु पाश्चात्य की संस्कृति के प्रवाह से भारतीय संस्कृति धूमिल होकर रह गई।

सनातन संस्कृति तो कहती है कि :-

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि ।

हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सम्बभूथ ॥ 8 ॥

(ऋग्वेद, 10 वा मंडल, सूक्त 18)

अर्थात: (पति की मृत्यु के बाद उसकी विधवा पत्नी से) उठ! तुझे संसार वापस बुला रहा है, तू किसका पक्ष ले रही है जो मृत शरीर है। जिसने इस संसार में तेरा हाथ पकड़ा था और आकर्षित करता था वह मुक्त होकर चला गया।

अतः सनातन संस्कृति को दोष देने से पूर्व सनातन संस्कृति क्या कहती है यह अवश्य जानना चाहिए। बहुत ही सोच विचार करके, विभिन्न माध्यमों द्वारा सनातन संस्कृति को धूमिल करने का प्रयास होता आ रहा है, जिनमें महत्वपूर्ण भूमिका टीवी सीरियल्स और सिनेमा निभाते हैं। जैसे कि आपने देखा होगा कि अगर किसी स्त्री ने भारतीय कपड़े पहन रखे हैं तो वह कोई सास ही होगी जो अपनी पुत्रवधू पर अत्याचार करती होगी। और वही पुत्रवधू सभ्य और शालीन दिखाई जाएगी जो पाश्चात्य कि संस्कृति का अनुकरण करेगी।

अब आप कहेंगे कि ऐसी बातों पर कौन ध्यान देता होगा! अब आप ध्यान नहीं देते तो इसका अर्थ यह नहीं कि कोई नहीं देता होगा। आज तक सनातन संस्कृति पर जो भी आघात हुए हैं, वह बहुत सोच समझ कर ही हुए हैं।

हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जब भी कोई बात सनातन धर्म के विरोध में बोली जाए तो पहले उसे खुद परखें फिर उस पर विश्वास करें। अन्यथा वही होगा जो आज तक होता आया है।

-------●-------

अध्याय 5
स्तन कर: एक तर्कहीन इतिहास

क्या स्तन कर भी सनातन संस्कृति को बदनाम करने की साजिशों में से एक था?

क्यों स्तन कर के इतिहास का कोई भी साक्ष्य उपलब्ध नहीं है?

जो इतिहास हमें बताया जा रहा है क्या वह तर्कसंगत है या फिर काल्पनिक?

क्या इसका भी वामपंथियों, कम्युनिस्टों, मुगलों और ब्रिटिशों के साथ कोई सम्बंध है?

सनातन धर्म, एक ऐसा धर्म जहां प्रत्येक मनुष्य को समभाव से देखा जाता है अर्थात सभी मनुष्यों को समानता की दृष्टि से देखा जाता है। और सिर्फ मनुष्य ही नहीं अपितु पशु, पक्षी, प्रकृति, आदि सभी के प्रति समभाव की दृष्टि रखी जाती है। ना जात में कोई ऊंचा होता था ना कोई नीचा होता था। ना कोई गरीब होता था ना कोई अमीर होता था। सभी को एक दूसरे के प्रति प्रेम भाव था।

ऐसी श्रेष्ठतम संस्कृति को बदनाम करने के लिए अनेकों प्रयास किए गए। प्रत्येक विदेशी आक्रान्ताओं का भारत आने का एक ही लक्ष्य रहता था, भारत को लूटना और उसकी संस्कृति को नष्ट करना।

क्योंकि भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता अन्य देशों को भाती नहीं थी। इसीलिए इसको बदनाम करने के लिए, इसे नष्ट करने के लिए भरसक प्रयास किए गए और ऐसा करने के लिए साम, दाम, दंड, भेद आदि सभी नीतियों को अपनाया गया।

इन्हीं नीतियों में से एक था **"स्तन कर"**। जिसका इतिहास तर्कहीन है, जिसको सही साबित करने के कोई पक्के सबूत उपलब्ध नहीं हैं। परंतु फिर भी इसे लोगों के दिमाग में ऐसे बैठाया गया है कि वह उसे सच मानने लगे। कम्युनिस्टों ने नांगेली की कहानी को इस प्रकार रचा की सभी लोग इसे सच मानने लगे और सनातन धर्म पर आघात करने लगे। जिसके कारण लोगों के बीच मतभेद होने लगे, ऊंच नीच का भेदभाव होने लगा। परिणाम स्वरूप अनेकों हिन्दुओं ने अपना धर्म परिवर्तन कर लिया। यही तो कम्युनिस्ट चाहते थे!

परंतु सच बहुत देर तक छुपा नहीं रह सकता, वह कभी ना कभी सामने आ ही जाता है। या फिर उसे सामने लाने के लिए कोई ना कोई व्यक्ति सामने आ जाता है। स्तन कर की सच्चाई बताने वाले लोगों का कोटि-कोटि धन्यवाद। इसमें कुछ योगदान मैं भी करना चाहता हूँ!

"स्तन कर" की सच्चाई जानने से पहले हमें यह जानना जरूरी है कि अखिर स्तन कर का झूठा इतिहास क्या था? इस विषय में बनाई गई झूठी कहानियों का आधार क्या था? और इसके पीछे अंग्रेजों का राजनीतिक कारण क्या था? और जब हम, इस झूठे इतिहास

की कड़ी से कड़ी मिलाकर देखेंगे तो सच्चाई अपने आप हमारे सामने आ जाएगी। और हमारी आंखों पर ढंका हुआ झूठ का यह पर्दा हट जाएगा।

स्तन कर: एक काल्पनिक कहानी

सर्वप्रथम "स्तन कर" के विषय में वामपंथियों ने जो इतिहास बनाया और हमें बताया, उसे जानने की कोशिश करते हैं। वामपंथी इतिहास के अनुसार त्रावणकोर राज्य में राजा मार्तंड वर्मा के काल खंड (1729-1758) में निचली जाति की महिलाओं पर "स्तन कर" लगाया गया था जिसके तहत उन्हें शरीर से ऊपर का हिस्सा ढंकने की अनुमति नहीं थी। इस कर को "मुलक्करम" के नाम से जाना जाता था। यह कर नादर और एझावा समुदाय की महिलाओं पर लगाया गया था। यह जाती भेद को बनाए रखने के लिए नायर और नंबूदिरी ब्राह्मणों द्वारा निचली जातियों पर लगाया गया एक कर था। अनेकों विद्रोहों के बाद नांगेली ने जब अपने स्तन काट कर, कर स्वरूप पेश किए तब विद्रोह और अधिक भड़का जिसके

परिणाम स्वरूप 1924 में यह कर पूर्णतया हटा दिया गया। इसमें टीपू सुलतान और अंग्रेजों का बहुत बड़ा योगदान रहा। बाद में अंग्रेजों के बढ़ते प्रभाव के कारण वहाँ के हिंदू परिवारों ने सनातन धर्म को छोड़कर ईसाई पंथ अपना लिया। क्योंकि उनसे कहा गया था कि, "अगर आप ईसाई पंथ अपना लें तो आप पर यह कर नहीं लगेगा क्योंकि तब आप हिंदू नहीं रहेंगे"। अंग्रेजों की चिकनी चुपड़ी बातों में आकर अनेकों हिंदू परिवारों ने ईसाई पंथ अपना लिया।

यह झूठा इतिहास अधिकतर इतिहासकारों द्वारा बताया जाता है, परंतु इसका कोई भी तथ्य उपलब्ध नहीं है। क्योंकि उस समय इतिहास लिखने वाले भी अंग्रेज थे और इतिहास बताने वाले भी अंग्रेज थे। और उन्होंने कम्युनिस्टों की सहायता से और लोक कथाओं के माध्यम से स्थानीय लोगों के मन-मस्तिष्क में यह बात इस तरीके से बैठा दी थी कि उनको ऐसा लगने लगा था कि उनके पूर्वजों के साथ ऐसा हुआ होगा और उन्होंने अत्यंत कष्ट झेले जो कि ऊंची जातियों द्वारा दिए गए। परंतु जिस सनातन धर्म में ऊंची-नीची जातियाँ ही नहीं थीं, तो वह कष्ट कहाँ से देंगी।

अगर आपको यही झूठा इतिहास पढ़ना है तो आप किसी अन्य जगह से पढ़ सकते हैं। परंतु हम झूठे इतिहास पर ज्यादा ध्यान ना देते हुए तर्कों पर बात करते हैं।

स्तन कर कब लागू किया गया था, इसकी जानकारी आपको कहीं नहीं मिलेगी, क्योंकि वामपंथियों द्वारा यह बताया ही नहीं गया।

परंतु वामपंथी इतिहास के अनुसार यह राजा मार्तंड वर्मा के काल खंड में लगा था जो कि 1729 से 1758 तक था। तो इससे हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि यह कर 1729 के बाद ही आया होगा।

परंतु वामपंथियों का कहना था कि यह अनंतकाल से एक प्रथा के रूप में चला आ रहा है और इसी कारण वे सनातन धर्म पर कुठाराघात करते थे। परंतु यह तर्क तो यहीं समाप्त हो गया, क्योंकि यह कर 1729 के बाद आया था और सनातन धर्म तो 1729 से पहले भी था। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि यह सनातन धर्म की देन नहीं है। इसके पीछे अंग्रेजों की कुटिल नीतियाँ शामिल थीं, जिसके अनेक पहलू हैं और इसे समझने के लिए सर्वप्रथम हमें राजा मार्तंड वर्मा के बारे में जानना अति आवश्यक है।

राजा मार्तंड वर्मा कौन थे?

राजा मार्तंड वर्मा का जन्म 1706 में हुआ था और इन्होंने 1729 में त्रावणकोर राज्य की स्थापना करी थी और 1758 में इनकी मृत्यु हो गई थी। वे आधुनिक त्रावणकोर के निर्माता कहे जाते हैं। ये इतने शक्तिशाली थे कि इनके काल खंड में अंग्रेज कभी त्रावणकोर में घुस नहीं पाए। उनके शासन के तहत त्रावणकोर दक्षिणी भारत में सबसे शक्तिशाली बन गया था।

उन्होंने पड़ोसी राज्यों से अपने पैतृक क्षेत्र का विस्तार करने और पूरे दक्षिणी केरल को एकीकृत करने में अत्यधिक योगदान दिया है।

डचों की विस्तार वादी नीति को खराब करने के लिए उन्होंने 1741 में डचों को कुचल दिया। उन्होंने एक पर्याप्त स्थायी सेना का गठन किया और नायर अभिजात वर्ग (जिस पर केरल के शासक सैन्य निर्भर हो गए थे) की शक्ति को कम कर दिया और त्रावणकोर राज्य की उत्तरी सीमा को मजबूत किया।

मार्तंड वर्मा के शासन काल में त्रावणकोर दक्षिण भारत का सबसे अधिक शक्तिशाली राज्य था। शक्तिशाली होने का अर्थ यह नहीं कि उसके पास सैन्य शक्ति अधिक थी अपितु सैन्य शक्ति के साथ-साथ वहां का समाज एकजुट था, समाज के लोग एकजुट थे, उनमें किसी प्रकार का मतभेद नहीं था। वे आर्थिक और धार्मिक दोनों ही दृष्टि से संपूर्ण थे। किसी भी राज्य की शक्ति का सही मायने में यही अर्थ होता है कि वहां के नागरिकों में एकता हो क्योंकि एकता में ही शक्ति है।

अत्यधिक शक्तिशाली होने के कारण सिर्फ सैन्य बल के द्वारा अंग्रेजों का मार्तंड वर्मा पर विजय प्राप्त करना अत्यधिक मुश्किल कार्य था। इसी वजह से उन्होंने अपनी कुटिल नीतियों का प्रयोग

किया और उनके प्रति समाज के लोगों में एक गलत अवधारणा बना दी। जिसके कारण त्रावणकोर का समाज खोखला हो गया उनमें जाति के आधार पर भेदभाव अत्यधिक बढ़ गया। जिसका फायदा अंग्रेजों ने उठाया और 1795 में त्रावणकोर के तत्कालीन राजा कार्तिका तिरुनाल रामा वर्मा (1724-1798) को ब्रिटिशों के साथ एक सहायक गठबंधन स्वीकार करना पड़ा। जिसकी शर्तें निम्नलिखित थीं :-

- अंग्रेजों के साथ सहायक गठबंधन में प्रवेश करने वाले हर एक भारतीय शासक को अपने क्षेत्र में ब्रिटिश सेना को स्वीकार करना पड़ता था और उनके रखरखाव के लिए भुगतान करने पर भी सहमत होना पड़ता था।
- एक सहायक गठबंधन में प्रवेश करने वाला भारतीय शासक किसी अन्य शक्ति के साथ आगे कोई गठबंधन नहीं करेगा और न ही वह अंग्रेजों की अनुमति के बिना किसी शक्ति के खिलाफ युद्ध की घोषणा करेगा।
- शासक अंग्रेजों के अलावा किसी भी यूरोपीय को नियुक्त नहीं करेगा, और यदि वह पहले से ही ऐसा कर रहा था, तो वह उन्हें बरखास्त करेगा।
- किसी अन्य राज्य के साथ संघर्ष की स्थिति में, वह अंग्रेजों द्वारा तय किए गए प्रस्ताव से सहमत होगा।
- शासक ईस्ट इंडिया कंपनी को भारत में सर्वोच्च शक्ति के रूप में स्वीकार करेगा।

- शासक द्वारा उसकी शर्तों को स्वीकार करने के बदले में, कंपनी ने राज्य को बाहरी खतरों और आंतरिक विकारों से बचाने कि जिम्मेदारी उठाई।
- यदि भारतीय शासक गठबंधन द्वारा आवश्यक भुगतान करने में विफल रहे, तो उनके क्षेत्र का एक हिस्सा दंड के रूप में ले लिया जाता था।

इसके पश्चात समाज में जातिगत भेदभाव और अधिक मात्रा में बड़े और अंग्रेज इस बात का फायदा लगातार उठाते रहे। उन्होंने त्रावणकोर की संस्कृति की मूल भावना को खोखला बना दिया। और इस कार्य को करने के लिए अंग्रेजों का साथ देने वाले, बहुत से देश के ठेकेदार थे जो अपने फायदे के लिए किसी भी चीज का सौदा करने को तत्पर रहते थे। ऐसे ही कुछ कम्युनिस्ट थे जिनके कारण "स्तन कर" जैसी काल्पनिक कहानियाँ सामने आईं। जिसको सही साबित करने के लिए इतिहास के साथ-साथ शब्दों में भी फेरबदल कर दिए गये।

कम्युनिस्टों द्वारा लिखित इतिहास में बताया गया कि ‘‘स्तन कर’’ का विरोध 19 वीं सदी में नांगेली द्वारा अपने स्तन काट कर किया गया। साथ ही, उसने अपने स्तनों को टैक्स कलेक्टर के सामने बतौर कर यानी टैक्स पेश किया था। स्तन काटने के कारण उसका खून बहुत अधिक बह गया था, जिससे उसकी मौत हो गई थी। इसके

बाद, उसका पति भी दुःखी होकर उसकी चिता में ही कूदकर जान दे देता है।

परंतु नांगेली का यह चरित्र भी काल्पनिक लगता है क्योंकि नांगेली का जन्म और मृत्यु कब हुए, इसका कोई भी तथ्य हमारे इतिहास में नहीं मिलता क्योंकि यह कम्युनिस्टों द्वारा बताया ही नहीं गया। नांगेली के माता-पिता कौन थे इसकी जानकारी भी उपलब्ध नहीं है क्योंकि कहानी तो काल्पनिक है ना!

इस कहानी की शुरुआत पत्रकार सी. राधाकृष्णन ने की। इस कहानी में उन्होंने नांगेली और कडप्पन नामक किरदारों को गढ़ते हुए बेहतरीन कहानी लिखी। इसमें मसाला डालने के लिए उन्होंने नांगेली के पति की आत्महत्या की कहानी को भी जोड़ दिया। यह कहानी पहली बार 8 मार्च, 2007 को 'पायनियर' में प्रकाशित हुई थी। इसका मलयालम अनुवाद उसी दिन 'मातृभूमि' और 'मनोरमा' में भी प्रकाशित हुआ था।

इसके बाद, इसे वागाबॉन्ड, बी.बी.सी और टाइम्स ऑफ इंडिया समेत कई अन्य मीडिया संस्थानों ने इस कहानी को सच मानते हुए फैलाने की कोशिश की।

जिस कहानी को हम बार-बार सुनते हैं वह कहानी हमारे मन-मस्तिष्क में बस जाती है। ठीक उसी प्रकार बिना तथ्यों वाली नांगेली की यह कहानी हमारे मन-मस्तिष्क में बैठा दी गई जिससे हमें यह

लगे की यह एक असली कहानी है। और ऐसा हुआ भी परंतु सच्चाई कुछ और ही थी! चलिए जानते हैं।

मलयालम में कर को ‘‘थल्लाकरम’’ कहा जाता है। थल्लाकरम शब्द का उपयोग वोटिंग कर जैसे करों के लिए उपयोग किया जाता था। त्रावणकोर में भी मतदान के लिए टैक्स लगाया जाता था। हालाँकि, इसमें महिलाओं से अपेक्षाकृत कम टैक्स लिया जाता था। क्योंकि मलयालम में ‘‘मुला’’को ‘‘स्तन’’कहा जाता है। इसलिए सनातन धर्म को बदनाम करने के लिए रची गई कहानी में, ‘‘थल्लाकरम’’ को ‘‘मुल्लाकरम’’ और फिर ‘‘स्तन कर’’ के रूप में चित्रित किया गया।

लेकिन फिर भी एक प्रश्न मन में उठता है कि ऐसी कल्पना करना इतना सरल कार्य तो नहीं था तो फिर इसकी प्रेरणा कहाँ से मिली?

अगर जलवायु की दृष्टि से देखा जाए तो केरल एक उष्णकटिबंधीय जलवायु वाला क्षेत्र है अर्थात केरल की जलवायु गर्म है। इसी गर्मी से बचने के लिए केरल की महिलाएं व पुरुष दोनों ही कमर से ऊपर कपड़े नहीं पहनते थे। यह सुनने में थोड़ा अजीब लगेगा, परंतु यह सत्य है। उस समय केरल में लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं था इसीलिए महिलाएं और पुरुष दोनों ही कमर से ऊपर कपड़े नहीं पहनते थे।

इस बात का जिक्र कई विदेशी यात्रियों ने भी किया है जैसे 17 वीं, शताब्दी में भारत आए एक डच यात्री "विलियम वैन निउहोफ" ने त्रावणकोर की तत्कालीन रानी "अश्वती थिरुनल उमयम्मा" की पोशाक के बारे में बात करते हुए लिखा है, ''मुझे महारानी के सामने पेश किया गया था। उनके पास 700 से अधिक नायर सैनिकों का पहरा था, जो मालाबार शैली के कपड़े पहने हुए थे। रानी की पोशाक उसके बीच में लिपटे कॉलिको के एक टुकड़े से ज्यादा कुछ नहीं है। उसके शरीर का ऊपरी हिस्सा नग्न दिखाई देता है।''

विलियम वैन निउहोफ और अश्वती थिरुनल उमयम्मा

त्रावणकोर की रानी से हुई मुलाकात को लेकर विलियम वैन ने एक चित्र भी बनाया था। इस चित्र में यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि रानी और उनके साथ मौजूद लोगों ने अपने सीने को या तो कपड़े से नहीं ढँका है या फिर काफी छोटा कपड़ा डाला हुआ है।

इसके अतिरिक्त, 17 वी और 18 वी शताब्दी में आने वाले यात्री "पिएत्रो डेला वैले" और "जॉन हैरी ग्रोस" के अनुसार, केरल में

पुरुष और महिला दोनों ही ऊपरी कपड़े नहीं पहनते थे। एक अन्य यात्री "अब्बे डुबोइस" ने 1815 में लिखे अपने लेख "Hindu Manners, Customs and Ceremonies" (हिंदू शिष्टाचार, सीमा शुल्क और समारोह) में लिखा है कि वेश्याएँ ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए अपनी छाती को ढँकती हैं। वहाँ, स्तन ढँकना एक मोहक कार्य माना जाता था।

ऐसे ही एक मानव विज्ञानी "फ्रेड फावसेट" ने उल्लेख किया है कि मालाबार में रहने वाला कोई भी स्थानीय निवासी अपने स्तनों को या छाती को ढँकने का शौक नहीं रखता।

इसके अतिरिक्त कुछ उदाहरण और देखते हैं :-

श्री लंका के रोडिया समाज की महिलाएं
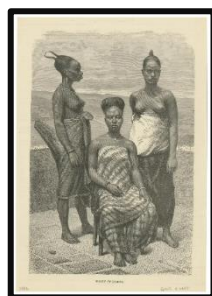
पेरिस की महिलाएं: 1868

अफ्रीका की वाई लड़कियां: 1910

अब 20 वीं सदी के कुछ उदाहरण देखते हैं :-

कनिपय्युर शंकरन नंबूदरीपाद की 20वीं शताब्दी की मलयालम पुस्तक से एक नंबूदिरी ब्राह्मण महिला

एल. के. अनंत कृष्ण अय्यर द्वारा लिखित 'द कोचीन ट्राइब्स एंड कास्ट्स' से नंबूदिरी ब्राह्मण महिलाएँ

ऐसी कई तस्वीरें और साक्ष्य उपलब्ध हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह सब सिर्फ एक काल्पनिक कहानी मात्र है। नीचे की तस्वीरों में दिखाया गया है कि नंबूदिरी परिवारों और समृद्ध नायर परिवारों की महिलाओं ने खुद स्तन नहीं ढका हुआ है। वास्तव में, इन महिलाओं को स्तन ढकने की आवश्यकता ही नहीं थी। इसे ऐसे भी समझ सकते हैं तब वहाँ स्तन ढकने की 'परंपरा' ही नहीं थी।

ऊपर की तस्वीरें उस समय की उच्च जाति की महिलाओं की तस्वीरें हैं। वहीं, आगे दी हुई तस्वीरें मशहूर चित्रकार राजा रवि वर्मा द्वारा बनाई गई तस्वीरें हैं। इन तस्वीरों में भी इस झूठी कहानी की पोल खुलती दिखती है।

राजा रवि वर्मा द्वारा त्रावणकोर की जूनियर रानी, भरणी तिरुनाल रानी पार्वती बाई की 19 वीं सदी की तस्वीर

19 वीं सदी की तस्वीर, राजा रवि वर्मा द्वारा 'मालाबार ब्यूटी'

इन तस्वीरों को ध्यान से देखने पर पता चलता है कि महिलाओं ने अपने सीने पर एक बिना सिला हुआ कपड़ा डाल रखा है। यह तो तब है जब महिलाओं ने तमाम तरह के गहने पहने हुए हैं। इससे हम यह कह सकते हैं कि उनका शोषण तो नहीं होता था।

नांगेली की कहानी हिंदू विरोधी मानसिकता को साफ दर्शाती हैं। सनातन धर्म को बदनाम करने के लिए ही ऐसी कहानियाँ जन्म लेती हैं जिनका कोई तथ्य नहीं होता, जो तर्कहीन होती हैं।

हाल ही में नांगेली की कहानी को टी. मुरली नामक एक मलयाली चित्रकार ने अपने द्वारा बनाई गईं तस्वीरों में उकेरा है। परंतु जब हम टी मुरली के विषय में गहराई से जानने की कोशिश करेंगे तो हमें पता चलेगा कि टी. मुरली अपने ब्लॉग में हिंदू देवी देवताओं के बारे में बहुत गलत बोलता है। जिससे टी. मुरली की हिन्दू विरोधी मानसिकता साफ दिखाई देती है। जिसे बी. बी. सी जैसे समाचार माध्यम प्राथमिकता देते हैं और उन्हें प्रसिद्ध करने में उनकी सहायता करते हैं। परंतु यह अभिव्यक्ति की आजादी सिर्फ सनातन धर्म के

खिलाफ ही प्रयोग की जाती है, इसका वास्तविकता से कोई लेना देना नहीं है।

फिर आते हैं कुछ नारीवादी संगठन जिन्होंने संसार की सभी नारियों के सम्मान का ठेका ले रखा है। अच्छी बात है, नारियों का सम्मान करना भी चाहिए परंतु जिस सनातन धर्म में सदा से ही नारियों को पूजा जाता है, उनका सम्मान किया जाता है, उस सनातन धर्म के विरोध में बोलने से पहले ऐसे संगठनों को सोचना चाहिए। और चलो मान भी लेते हैं कि निचली जातियों की महिलाओं पर ऐसा कोई लगा भी होगा, तो इसका समर्थन करने वाली उच्च वर्ग की महिलाएं भी तो शामिल थीं। इसमें "पितृ प्रधान समाज" की बात कहाँ से आती है। सनातन धर्म कभी पितृ प्रधान नहीं था। दरअसल तिल का ताड़ बनाने की आदत सी हो गयी है! हालांकि ऐसा कोई कर था नहीं, यह सिर्फ एक काल्पनिक कहानी है जिसे सी. राधाकृष्णन ने स्वयं स्वीकार किया है।

और अगर ये अंग्रेज स्त्रियों के सम्मान की चिंता करते ही हैं, तो इनसे पूछना चाहिए कि यूरोप में जब सर्दी खतम होती है और कुछ दिनों के लिए गर्मी आती है तब वहाँ समुद्री तट पर सभी यूरोपीय नागरिक चाहे स्त्री हो या पुरुष, सभी कपड़े उतार कर बैठते हैं। क्योंकि वहाँ की जलवायु ही ऐसी है। वहाँ तो सवाल नहीं उठाए गए! और फिर ये "पोर्न इंडस्ट्री" के विषय में क्या बोलेंगे?

अब बात करते हैं अंग्रेजों द्वारा स्थापित जाति व्यवस्था की।

अंग्रेजों ने सिर्फ उन हिंदूओं को ही राजनीतिक पदों पर नियुक्त किया था जिनका समाज में आदर था, इसीलिए नहीं कि वे उच्च जाति के थे बल्कि इसलिए कि उनके कर्म अच्छे थे जिसके कारण समाज में उनका आदर था। ऐसा करने से वे भारत में रहकर उनका समर्थन प्राप्त कर सकते थे। धीरे-धीरे उन्होंने सनातन धर्म को बदनाम करने के लिए एक जाति व्यवस्था बना दी, जिसमें ब्राह्मणों को सर्वप्रथम रखा गया और उनके नीचे क्षत्रिय, उनके नीचे वैश्य और उनके नीचे शूद्र, जो सनातन धर्म की वर्ण व्यवस्था के ठीक विपरीत थी, जिसमें कर्म को प्रधानता दी गई थी ना कि जन्म के आधार पर जाति व्यवस्था को।

शूद्रों को सबसे नीचे रखे जाने के कारण उनको शिक्षा से वंचित कर दिया गया। और अंग्रेजी जाति व्यवस्था के अनुसार जो उच्च जाति के थे, उनको शिक्षा में यही जाति व्यवस्था बताई जाती थी, जिससे उनके मन में यह जाति व्यवस्था बैठ गई थी जिसके कारण शूद्रों का शोषण हुआ। इसमें सनातन धर्म का कोई कसूर नहीं क्योंकि अंग्रेजों ने गुरुकुलों पर प्रतिबंध लगा दिया था जहाँ सभी को समान शिक्षा दी जाती थी चाहे वह किसी भी वर्ण का हो।

इसी अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था के कारण अस्पृश्यता जैसी गंभीर समस्या भारत में जन्मी और अंग्रेजों ने इसे सनातन धर्म पर थोप दिया। जिसके परिणाम स्वरूप अंग्रेजों द्वारा बनाई गई निचली जाति के लोगों का मंदिरों में प्रवेश वर्जित था। इतना ही नहीं उन लोगों

को मंदिरों के बाहर से भी नहीं जाने दिया जाता था। और फिर हुआ मालाबार विद्रोह!

मालाबार विद्रोह की कुछ तस्वीरें: 1921

मालाबार का यह विद्रोह हुआ तो अंग्रेजों के विरोध में था, परंतु अंग्रेजों की "फूट डालो, राज करो" की नीति के कारण यह विरोध हिंदूओं के विपक्ष में हो गया और यही अंग्रेज चाहते थे!

मालाबार की इस विद्रोह को "मोपला विद्रोह" भी कहा जाता है। कुछ इतिहासकार मानते हैं कि यह अंग्रेजों के विरुद्ध आंदोलन था, कुछ इतिहासकारों का मानना है कि यह हिंदुओं के विपक्ष में मुस्लिमों का एक आंदोलन था, कुछ इतिहासकार इसे सामाजिक भेदभाव के विरुद्ध आंदोलन में कहते हैं। परंतु सच्चाई क्या थी? इस बात पर हमें खुद विचार करना चाहिए और अपना दिमाग लगाना चाहिए।

दरअसल प्रथम विश्वयुद्ध में तुर्की की हार हुई थी। इसके बाद अंग्रेजों ने वहां के खलीफा को गद्दी से हटा दिया था। अंग्रेजों की इस कार्रवाई से दुनिया भर के मुसलमान नाराज हो गए। तुर्की के सुलतान

की गद्दी वापस दिलाने के लिए ही खिलाफत आंदोलन की शुरुआत हुई।

अब प्रश्न यह उठता है कि जब गुस्सा अंग्रेजों के लिए था तो विद्रोह हिंदुओं के विरुद्ध कैसे हो गया? यही फूट की खाई अंग्रेजों द्वारा बनाई गई थी।

भारत में दोगले लोगों की कमी नहीं थी। अंग्रेजों द्वारा उन लालची लोगों को ही उच्च पदों पर बिठाया गया था। और अंग्रेजों का समर्थन प्राप्त करने के लिए ही वह अन्य लोगों पर अत्याचार करते थे क्योंकि उनको ऐसा करने के लिए अंग्रेज कहा करते थे। जिसके बदले में उन्हें इनाम दिया जाता था।

और इसी अत्याचार के कारण मालाबार में विद्रोह हुआ जो अंग्रेजों के खिलाफ कम और हिंदुओं के खिलाफ अधिक था। जिसके कारण लाखों हिंदुओं के घर तोड़ दिए गए, गायों को मार दिया गया, हजारों हिंदुओं को धर्म परिवर्तन करना पड़ा और तकरीबन 10000 से अधिक लोग इस विद्रोह में मारे गए।

इस विद्रोह को अंग्रेजों द्वारा कुचल दिया गया। परंतु यह जो विद्रोह हुआ था वह सनातन धर्म के खिलाफ नहीं था, अपितु अंग्रेजों द्वारा बनाई गई व्यवस्था के खिलाफ था। इसमें सभी समुदाय के लोग शामिल थे। परंतु वामपंथी इस बात को हमेशा सनातन धर्म से ही जोड़कर देखते हैं क्योंकि उस सामंती व्यवस्था में कुछ हिंदू परिवार भी शामिल थे।

इसी विद्रोह की तर्ज पर शुरू हुआ वैकोम सत्याग्रह जो वैकोम महादेव मंदिर में प्रवेश पाने के लिए था। स्थिति इतनी खराब थी कि निचली जाति के लोगों को मंदिर में प्रवेश करना तो दूर, मंदिर के आसपास भी नहीं भटकने दिया जाता था। और यह स्थिति सनातन धर्म की देर नहीं अपितु अंग्रेजों द्वारा बनाई गई जाति व्यवस्था के कारण थी। क्योंकि किसी व्यक्ति को बचपन से ही बताया जाए कि यह निचली जाती है, इससे तुम्हें दूर रहना है, तो वह बड़ा होकर वही कार्य करेगा। वैकोम सत्याग्रह एक अहिंसक आंदोलन था जिसका नेतृत्व कांग्रेस के कई नेता कर रहे थे। महात्मा गांधी भी इसी में शामिल थे।

यह सत्याग्रह अंग्रेजों द्वारा बनाई गई जाति व्यवस्था के खिलाफ था ना कि सनातन धर्म के खिलाफ। परंतु कुछ वामपंथियों द्वारा इसे सनातन की उपज कहा गया और लगातार सनातन धर्म पर प्रहार किया गया। सनातन धर्म में कभी जाति के आधार पर भेद भाव नहीं किया जाता है। यहाँ कर्म और चरित्र के आधार पर व्यक्ति की पहचान होती है।

तो हम बात कर रहे थे स्तन कर की, वामपंथियों द्वारा जो इतिहास हमें बताया गया उसमें कहा गया कि स्तन कर 1924 में समाप्त हो गया जिसके लिए काफी विद्रोह हुए। परंतु अगर इतिहास को देखा जाए तो ऐसा कोई विद्रोह सामने नहीं आता। 1924 में हुआ वैकोम सत्याग्रह ही एकमात्र ऐसा आंदोलन था जो अस्पृश्यता के विरुद्ध हुआ था। परंतु यह अस्पृश्यता भी अंग्रेजों की देन थी ना कि

सनातन धर्म की। लेकिन इतिहास तो वामपंथी और कम्युनिस्टों के हाथ में ही था, इसीलिए उन्होंने स्तन कर की समाप्ति भी 1924 को ही कर दी क्योंकि अन्य कोई तिथि बता नहीं सकते थे!

जितना इतिहास आज तक हमने पड़ा उस पर सवाल उठाना बहुत आसान हो जाता है क्योंकि जो हमारे शास्त्रों में लिखा है, जो हमारे धर्म ग्रंथों में लिखा है, ठीक उसके विपरीत हमारे धर्म को हमें बताया गया। तो सवाल करना हमारा अधिकार बन जाता है!

नांगेली की जो कहानी बताई गई है, अगर उसमें थोड़ी सी भी सच्चाई है और ऐसा हुआ भी हो तो वह सनातन धर्म के कारण नहीं हुआ होगा। यह उस जाति व्यवस्था के कारण हुआ जिसे अंग्रेजों ने बनाया, यह उस भेदभाव के कारण हुआ जिसका सनातन धर्म से कोई लेना-देना नहीं है।

परंतु भारतीय परंपरा और संस्कृति से जलने वाले लोग इस बात को सहन न कर सके कि भारतीय संस्कृति इतनी उन्नत कैसे है। इसीलिए उन्होंने आर्यव्रत की संस्कृति को बदनाम करने के लिए तमाम हथकंडे अपनाए और यह भी उन्हीं में से एक था।

एक और उदाहरण देखते हैं:-

मार्तंड वर्मा को "मार्तंड वर्मा" ही क्यों कहा जाता था?

"मार्तंड" तो उसका नाम था और "वर्मा" उसके पीछे लगाने वाली उपाधि थी।

परंतु क्या आप जानते हैं कि वर्मा का अर्थ मलयालम में क्या होता है?

"वर्मा" का अर्थ होता है "रक्षक" अर्थात जो राज्य के नागरिकों की रक्षा करे, जो देश की रक्षा करे। अब आप सोच सकते हैं कि इस उपाधि को प्राप्त करने वाले "मार्तंड" समाज के रक्षक थे, जिसे समाज ने अपनाया था। परंतु अंग्रेजों द्वारा "वर्मा" उपनाम को ही एस. सी और एस. टी में विभाजित कर दिया गया।

कमाल का खेल खेला गया अंग्रेजों द्वारा और हम भी उनके द्वारा बनाए गए जाल में फंसते चले गए, इसका कारण क्या था यह हमें अपने आप से पूछना चाहिए!

-------●-------

अध्याय 6

देवदासी प्रथा: एक अर्धसत्य

देवदासी किसी प्रथा का नाम है या किसी उपाधि का? कौन थी देव दासियाँ?

भारत की सांस्कृतिक विरासत में देव दासियों का क्या योगदान था?

क्या आप देव दासियों की कला के सन्दर्भ में जानना चाहेंगे?

इतने अध्यायों को पढ़ने के पश्चात आपको यह तो समझ आ ही गया होगा कि सनातन धर्म को मलिन करने के लिए विदेशी आक्रान्ताओं द्वारा अनेकों प्रयास किए गए, विभिन्न प्रकार के हथकंडे अपनाए गए, हमारी सांस्कृतिक विरासत को नष्ट किया, हमारी परंपराओं को गलत तरीके से दर्शाया गया। पिछले अध्यायों में पढ़ी गईं प्रथाओं की तरह ही "देवदासी" को भी गलत ढंग से प्रस्तुत किया।

हो सकता है हमें दासी शब्द सुनने में अजीब लगे क्योंकि ये भाव हमारे मन में बचपन से ही दिए जाते हैं कि दास अर्थात काम करने वाले नौकर-चाकर। परंतु दास का अर्थ होता है किसी भी व्यक्ति या वस्तु के प्रति समर्पित कोई व्यक्ति। अर्थात जो तन-मन से किसी भी वस्तु या किसी भी व्यक्ति के साथ जुड़ा हो, उसकी भावनाएं उस

व्यक्ति के प्रति समर्पित हों। ठीक उसी प्रकार देवदासी भी थीं जो भगवान के प्रति समर्पित थीं। देवदासी अर्थात भगवान के प्रति समर्पित कोई महिला।

आपने बहुत से पुरुषों का नाम देवदास सुना होगा परंतु इसका अर्थ क्या होता है? देवदास का अर्थ होता है भगवान का दास, अर्थात भगवान का सेवक, या जिसकी श्रद्धा भगवान में हो, जो तन-मन से भगवान के प्रति समर्पित हो। वैसे ही एक उपाधि का नाम देवदासी भी था जो महिलाओं को दी जाती थी, उन महिलाओं को जो स्वयं को स्वयं की इच्छा से भगवान को समर्पित कर देती थीं।

जिस प्रकार कोई पुरुष सन्यास ले कर ईश्वर की खोज में निकलता है और अपना तन मन ईश्वर को समर्पित करता है ठीक उसी प्रकार कोई स्त्री अगर भगवान के प्रति समर्पित होती है तो इसमें गलत क्या है?

अब आप कहेंगे कि बचपन से ही ईश्वर की खोज में क्यों निकलना? तो मेरा जवाब यह होगा कि ईश्वर की खोज के लिए कोई समय नहीं होता वह चाहे आप बचपन में करें या बुढ़ापे में। ऐसे अनेकों उदाहरण रहे हैं जहां ऋषि मुनि अपने बचपन से ही तपस्या में लगे रहते थे उन्होंने गृहस्थ जीवन का त्याग कर ईश्वर की खोज में घोर तपस्या की।

तो क्या इसका अर्थ यह हुआ कि भगवान उनका शोषण कर रहा है। वामपंथी विचारधारा तो यही समझती है!

जिस प्रकार ऋषि मुनि बचपन से ही तपस्या करते थे ठीक उसी प्रकार स्त्रियां भी स्वयं की इच्छा से भगवान को समर्पित हो जाती थी और इन्हीं को देवदासी कहा जाता था।

ऐसा स्त्री और पुरुष दोनों करते थे। जो घोर तपस्या नहीं कर पाते थे वह मंदिर में रहकर ही अपना जीवन यापन करते थे और उनको उसी के हिसाब से विभिन्न उपाधियाँ दे दी जाती थीं। **उन्हीं उपाधि में से एक थी "देवदासी"**।

परंतु तथाकथित वामपंथी समाज सुधारकों द्वारा इसे अनुचित समझा गया। इसे उन ईसाई मिशनरियों द्वारा अनुचित समझाया गया जिनकी चर्च में कार्यरत महिलाओं के साथ दुराचार की घटनाएं सामने आती रहती हैं।

इन लोगों द्वारा हमारा इतिहास इतना नष्ट किया गया कि आज हमें उसे सही साबित करने के लिए सबूत देने पड़ते हैं, इसे हमारी मजबूरी भी कह सकते हैं।

और बहुत सारे लोग तो आज इन सबूतों पर विश्वास भी नहीं करेंगे। परंतु यह हमारा कर्तव्य है कि हम सच्चाई को सामने लाएं भले ही किसी को उस पर विश्वास हो या ना हो!

तो जानते हैं कि वास्तविक रूप में देवदासी कौन थीं।

कौन थीं देव दासियाँ?

नृत्य करती देव दासी

सबसे पहले तो यही बताना चाहूँगा कि देवदासी कोई प्रथा का नाम नहीं था, देवदासी एक उपाधि का नाम है। भारतीय संस्कृति में देव दासियाँ, समाज में सम्मानित उन महिलाओं को कहा जाता था जिन्होंने अपना जीवन भगवान को समर्पित कर दिया था। और उन्हें यह सम्मान भी इसी कारण मिलता था। देवदासी अपना सारा जीवन प्रभु सेवा में ही लगा देती थीं। वह मंदिर में रहतीं, वहीं खाना खातीं, प्रभु सेवा में सहायता करतीं, विभिन्न कलाएं सीखतीं, आरती के समय गायन-वादन तथा नृत्य करतीं आदि-आदि। ऐसे ही वे अनेकों कार्य करती थीं।

यहां तक कि अपने आस-पास के बच्चों को धार्मिक शिक्षा भी देती थीं। साथ ही उन बच्चों को अनेकों प्रकार की कलाएं भी सिखाती थीं। यहाँ इस बात का खंडन होता है कि महिलाओं को शिक्षा का अधिकार नहीं था जबकि यहाँ तो महिलाएं शिक्षा देती थीं।

कत्थक, भरत नाट्यम, कुचिपुड़ी, मोहिनीअट्टम, ओडिसी आदि विभिन्न प्रकार की कलाओं की जननी भी इन्हीं देव दासियों को कहा जा सकता है क्योंकि इन्हीं के द्वारा यह अस्तित्व में आई थीं। राग, वाद्ययंत्र वादन, चित्रकला आदि कलाएं भी देव दासियों के कारण जीवित रहीं। "लता मंगेशकर, आशा भोंसले, मदुरै शनमुखावडिवु शुभलक्ष्मी" जैसी प्रसिद्ध गायिकाएं, देव दासियों की ही देन हैं।

भारतीय परंपरा में कहा जाता है कि जो देश के लिए समर्पित होता है या फिर किसी भगवान के लिए समर्पित होता है और उस समर्पण भाव के लिए वह सब कुछ त्याग देता है, उसकी रक्षा, उसका सम्मान देश की जनता करती है।

इसी भावना के कारण समाज के लोग देवदासियों की रक्षा तथा सम्मान करते थे। सम्मान के तौर पर उन्हें समाज में होने वाले प्रत्येक अनुष्ठान में बुलाया जाता था और उनका आदर सत्कार किया जाता था। उनका आशीर्वाद लिया जाता था।

जिस समाज में लोग देवदासियों का सम्मान करते थे, उनका आशीर्वाद लेते थे, उस समाज के लोग उनका शोषण कैसे कर सकते हैं। परंतु अंग्रेजों द्वारा इन्हें गलत निगाहों से देखा गया।

अब हम जानने की कोशिश करते हैं कि देवदासी का जीवन कैसा होता था, उसे अपनी दिनचर्या में क्या-क्या कार्य करने होते थे?

जब कोई लड़की भगवान को समर्पित होती थी तो उसे सुबह ब्रह्म मुहूर्त में जल्दी जागना पड़ता था। उसे मंदिर की साफ-सफाई कर, स्नान कर मंदिर में भगवान की पूजा के लिए उपस्थित होना पड़ता है।

परंतु इसमें ऐसा गलत क्या था? मंदिरों में भगवान की पूजा करने के लिए तो लोग तरसते थे, जिसे उन स्त्रियों ने अपने समर्पण से हासिल किया।

मंदिर में पूजा पाठ करने के बाद देवदासी, अपने से बड़े पुजारी द्वारा अनेकों प्रकार की कलाएं सीखती थीं। जिसमें नृत्य कला, संगीत कला, शास्त्र अध्ययन, वेद पाठ, आदि कलाएं शामिल थीं।

वे प्रत्येक मंगलवार और शुक्रवार को अपने से बड़े संतों के साथ भजन कीर्तन करते हुए गाँव-गाँव घूमती थीं। और जब गाँव वाले उन्हें कुछ दान-दक्षिणा देते थे, तो वे उसे भेंट स्वरूप स्वीकार कर लेती थीं।

परंतु इसमें गलत क्या है? आज अंग्रेज भी सनातन धर्म स्वीकार कर भगवान की भक्ति में लीन होकर सड़कों पर घूमते हैं, मैंने वृन्दावन में ऐसे अनेकों अंग्रेज देखे हैं जो घर-घर जाकर दान-दक्षिणा लेते हैं। दरअसल दान-दक्षिणा लेने के पीछे का महत्व हमें नहीं पता इसीलिए हमनें इसे गलत ठहरा दिया है। दान लेने से अपने भीतर का अहंकार नष्ट होता है, हमें हर परिस्थिति में जीने की

आदत पड़ती है। और इस गूढ़ महत्व को समझना हर किसी के बस की बात नहीं, खासकर ये वामपंथियों की पहुँच से तो बाहर ही है!

विदेशी आक्रमणकारियों ने देव दासी को एक गलत तरीके से देखा। उन्होंने देव दासी को वैश्या के रूप में प्रस्तुत किया क्योंकि इससे पहले ब्रिटिशों ने कभी भी अपने यहाँ ऐसी व्यवस्था नहीं देखी थी। अब जिसके यहाँ जो होगा उसे वैसा ही तो दिखेगा!

ब्रिटिशों द्वारा अनेक कानून बनाकर इस व्यवस्था को अवैध घोषित कर दिया गया। अब देव दासियों को अपना पंजीकरण कराना पड़ता था। धीरे-धीरे देवदासी का वो सामाजिक महत्व कम होता चला गया, लोगों की निगाहों में उनका सम्मान खत्म हो गया, क्योंकि अब लोग इन्हें वैश्या समझने लगे थे।

और फिर शुरू हुआ शोषण, देव दासियों का शोषण, अंग्रेजों द्वारा, मुगलों द्वारा!

अब देव दासियों को अपने आप को बेचने के लिए विवश होना पड़ा। ना चाहते हुए भी उन्हें ऐसा करना पड़ा क्योंकि अब उनके पास खाने पीने के लिए कुछ नहीं बचा था, पहनने के लिए कपड़े नहीं बचे थे, समाज के लोग अब उनका पहले जैसा आदर नहीं करते थे, तो ऐसे में वो क्या करतीं।

वामपंथियों ने भी कोई कसर नहीं छोड़ी थी! इस मुद्दे को उन्होंने जातिवाद से भी जोड़ दिया और कहा कि सिर्फ निचली जात की

महिलाएं ही क्यों देव दासी बनती हैं। पर इन मूर्खों को समझाने के लिए सबूत देने पड़ते हैं। और सबूत देने भी क्यों ना पड़ें, आखिर अंग्रेजों का साथ देने वाले भारतीय भी तो थे, जिन्होंने इतिहास को गलत रूप से दर्शाया, सामाजिक मान्यताओं का दमन किया।

हमें एक बात ध्यान रखनी चाहिए कि हम जो इतिहास पड़ते हैं वो हमें जबरदस्ती पढ़ाया जाता है, हमारा असली इतिहास तो किसी को पता ही नहीं होगा। इसे मजबूरी में पढ़ना पड़ता है क्योंकि अगर ना पढ़ें तो शायद हम परीक्षाओं में अनुत्तीर्ण हों जाएं। ऐसी मजबूरी भी इन्हीं अंग्रेजों की देन है!

और अगर आज की दृष्टि से देखें तो एक वैश्या वाले काम तो हमारा बॉलीवुड भी कर लेता है! पर इसपर तो हमनें सवाल नहीं उठाए। इसे तो हम अभिव्यक्ति की आजादी से जोड़ते हैं। तो फिर उन महिलाओं का क्या जो अपनी अभिव्यक्ति की आजादी के कारण स्वयं भगवान को समर्पित हो रहीं थीं। इन्हीं पर प्रश्न क्यों उठाया गया।

धर्म लोगों को बाँधता नहीं है, लोगों को जीना सिखाता है, समर्पण सिखाता है। धर्म कभी किसी से जबरदस्ती कोई काम नहीं कराता और ना ही किसी को मजबूर करता है। पर इन वामपंथियों को कौन समझाये! ये वो लोग हैं जिन्होंने आज तक कोई धर्म ग्रंथ पढ़ नहीं पर सवाल प्रतियोगिता ग्रंथ पर उठाए हैं। और गलती हमारी रही की हम इनकी बातों में आते गए। और बातों में आए तो ऐसे आए की

हमनें भी धर्म की आड़ में महिलाओं का शोषण करना शुरू कर दिया, देव दासियों का शोषण करने में मंदिर के पुजारी भी शामिल होंगे इसमें कोई दो राहें नहीं परंतु इसमें सनातन धर्म का क्या कसूर, इसमें भारतीय परंपराओं का क्या कसूर। अगर सच में धर्म ग्रंथ पढ़े होते तो ऐसा नहीं होता, पर धर्म ग्रंथ पढ़ने ही कहाँ दिए गए अंग्रेजों द्वारा।

अंग्रेजों द्वारा भारतीय संस्कृति को नष्ट किया गया, यह हम सब जानते हैं लेकिन फिर भी जब कहीं बात आती हैं उन कुप्रथाओं की जो सनातन धर्म में ना होते हुए भी थीं, क्योंकि उन्हें अंग्रेजों द्वारा बनाया गया था, उन सब प्रथाओं पर हम विश्वास कैसे कर लेते हैं!

इस सोच को हमें बदलना होगा अन्यथा आज जो परम्परा हैं उन्हें भी गलत तरीके से पढ़ाया जाएगा और हम कुछ नहीं कर पाएंगे।

-------●-------

अध्याय 7

बाल विवाह: आक्रमणकारियों की देन

छोटे बच्चों का विवाह करने की अनुमती सनातन धर्म देता है या ऐसा करना लोगों की मजबूरी थी?

अगर मजबूरी थी, तो उस मजबूरी को किसने बनाया और उसका फायदा किसने उठाया?

अगर इसमें भी विदेशी आक्रमणकारियों का हाथ था तो सनातन धर्म की बदनामी क्यों?
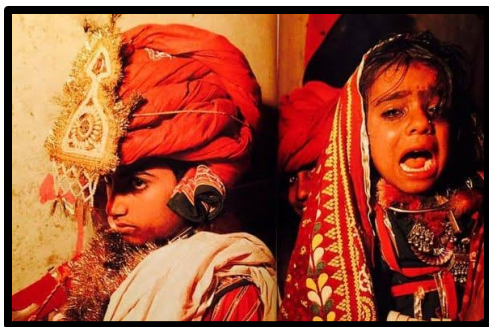
बाल विवाह

अध्याय की शुरुआत करने से पहले ही आप समझ गए होंगे कि बाल विवाह में भी सनातन धर्म को बदनाम करने की साजिश होगी जो विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा रची गई होगी। और इसको गलत

साबित करने के लिए उनके द्वारा अनेकों प्रकार के तथ्य दिए गए परंतु इनके कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। भारत में बाल विवाह जैसी कुप्रथा कभी थी ही नहीं क्योंकि वामपंथियों द्वारा जो तथ्य दिए गए, वह तर्क हीन हैं।

हमें भी इस बात पर विश्वास करना चाहिए कि आज तक हमने जो कुछ पढ़ा उसको अगर किनारे रख दिया जाए और असली इतिहास पढ़ा जाए और भारत के साथ-साथ अन्य देशों का इतिहास भी पढ़ा जाए तो दूध का दूध और पानी का पानी हो जाएगा। क्योंकि भारत का रिश्ता प्रायः सभी देशों से था, तो भारत का इतिहास भी अन्य देशों के इतिहास से जरूर मिलता होगा उसमें कहीं ना कहीं वह कड़ी जुड़ती होगी जिसे मैं जोड़ना चाहता हूँ।

अगर बाल विवाह जैसी प्रथाओं को देखा जाए तो राजस्थान में प्रायः देखने को मिलता है कि माँ-बाप अपने बच्चों की शादी छोटी उम्र में करा देते थे साथ ही साथ केरल जो साक्षरता दर में सबसे अधिक है वह भी बाल विवाह जैसी प्रथाओं के लिए जाना जाता है। परंतु क्या यह सत्य है? नहीं...!!

चलिए इसका इतिहास समझने की कोशिश करते हैं :-

राजस्थान, जो अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध है जहाँ अनेकों वीरों ने जन्म लिया है। ऐसी धरती जो सदैव सनातन धर्म की रक्षा के लिए अनेकों वीरों को जन्म देती रही, उस धरती पर सनातन धर्म को बदनाम करने की साजिश किसी सनातनी द्वारा तो नहीं की

जाएगी! तो फिर इसके पीछे किसका हाथ था? यह सोचने वाली बात है!

बच्चों की शादी, खासकर लड़कियों की शादी छोटी उम्र में करा दी जाती थी। ऐसा इसीलिए नहीं कि सनातन में ऐसी कोई प्रथा है बल्कि इसीलिए, क्योंकि विदेशी आक्रांताओं द्वारा हमारी माताओं बहनों के साथ, भारतीय नारियों के साथ जो अत्याचार किया जाता था उसे कोई मां-बाप नहीं देखना चाहता था। इसीलिए उनकी शादी जल्दी करा दी जाती थी। परंतु विदेशी आक्रांताओं के खिलाफ बोलने की जगह वामपंथी द्वारा सनातन धर्म को ही निशाना बनाया गया। निशाना तो बनाया ही, निशाना बनाने के साथ-साथ उन्होंने भारतीय लोगों को भी यह बताया कि उनके धर्म में कमी है। जो कमी कभी थी ही नहीं वह कमी उन्होंने हमारी किताबों में लिख दी जिसे हम बचपन से पढ़ते आ रहे हैं। और हमारे मन में, यह प्रश्न भी नहीं उठता कि ऐसा क्यों?

मैं फिर वही कहता हूँ कि सनातन धर्म में स्त्रियों का सम्मान सदैव किया जाता है पर वामपंथियों द्वारा बताए गए इतिहास में हमेशा उल्टा ही दर्शाया जाता है। इसमें कमी किसकी है यह हमें सोचना चाहिए!

आइए अब हम उन तर्कों को देखते हैं जो धर्म के सौदागरों द्वारा दिए गए :-

सबसे पहले तो यही तर्क दिया जाता है कि बाल विवाह जैसी प्रथा आर्यों के साथ भारत आई।

अब उनसे पूछना चाहिए कि, "आर्य क्या भारत के बाहर से आए थे? और आए थे तो किस देश से आए थे? और जिस देश से आए थे, तो उस देश के इतिहास में ऐसा क्यों नहीं लिखा गया कि आर्य हमारे देश से भारत गए थे?"

सब गोलमाल बातें इन वामपंथियों द्वारा बनाई गईं और भारतीय संस्कृति को धूमिल करने की पूरी-पूरी कोशिश की परंतु हमारी संस्कृति इतनी धन्य है, इतनी मजबूत है कि ये उसे धूमिल नहीं कर पाए। क्योंकि सत्य को बहुत दिनों तक छुपाया नहीं जा सकता, वह कभी ना कभी सामने आ ही जाता है।

एक अन्य तर्क जो वामपंथियों द्वारा दिया जाता है वह यह है कि भारत में निर्धनता बहुत थी इसीलिए माँ-बाप अपने बच्चों की शादी खासकर अपनी बेटियों की शादी छोटी उम्र में करा देते थे जिससे उन्हें दहेज नहीं देना पड़ता था।

अब इनसे कोई पूछे कि सौने की चिड़िया किसे कहा जाता था? सीधा सा उत्तर है कि भारत को सौने की चिड़िया कहा जाता था। अब सौने की चिड़िया कहते हैं तो इसका अर्थ यही तो है कि भारत के लोगों के पास खूब सौना होता होगा तो गरीबी कहाँ से आ गई। दूसरा दहेज से बचने के लिए जल्दी शादी करा देते थे तो दहेज प्रथा का सही रूप तो हम पिछले अध्याय में पढ़ ही चुके हैं। दहेज लालच

वश नहीं लिया जाता था अपितु अपनी बेटी की सुविधा के लिए ससुराल में जो सामान भेजे जाते थे, जो सहायता भेजी जाती थी उसे दहेज कहते थे। यह लालच के लिए नहीं लिया जाता था, और ना ही दिया जाता था। वामपंथियों का इतिहास यहाँ भी तर्क हीन साबित हुआ!

एक और बात कही जाती है कि भारत में साक्षरता की बहुत कमी थी। यहाँ के लोग पढ़ना लिखना नहीं जानते थे, अनपढ़ होने की वजह से ही हमारे यहाँ बहुत सारी कुप्रथाएं थीं। इसलिए विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा हमें पढ़ाया गया।

अब यह तो अंग्रेजों के दस्तावेज खुद बोलते हैं कि भारत में उनके आने से पहले साक्षरता कितनी थी। यहाँ स्थित नालंदा विश्वविद्यालय विश्व भर में प्रसिद्ध था जहाँ पूरे विश्व से पढ़ने के लिए विद्यार्थी आते थे। इस विश्वविद्यालय को बख्तियार खिलजी द्वारा जला दिया गया परंतु यह हमारी किताब कभी नहीं बताएंगी। ऐसा सिर्फ एक नहीं, अपितु अनेकों विश्वविद्यालय थे। विक्रमशिला विश्वविद्यालय, तक्षशिला विश्वविद्यालय, आदि ऐसे विश्वविद्यालय थे जो अपनी शिक्षा के कारण विश्व भर में प्रसिद्ध थे परंतु यह हमारी किताबों से लुप्त हैं। ऐसे देश की साक्षरता कम थी यह बात हजम नहीं होती!

ऐसे न जाने कितने ही तर्क दिए गए जिन पर विश्वास करना थोड़ा कठिन हो जाता है तब जब हम सच्चाई जानते हों!

कौमार्य का भंग होना, लड़की की जिम्मेदारी से मुक्त होना, संयुक्त परिवार होना, ऐसे न जाने कितने ही तर्क दिए गए जिनका आगे-पीछे का कोई तुक नहीं बनता। परंतु हमारी शिक्षा व्यवस्था ने इसे आज भी अपना रखा है!

हम मानते हैं कि बच्चों का विवाह कराया जाता था, परंतु उसके पीछे सनातन धर्म का कोई हाथ नहीं था, उसके पीछे लड़कियों को प्रताड़ित करने जैसा कोई उद्देश्य नहीं था। यह तो सिर्फ लड़कियों के मान सम्मान को बचाने के लिए, विदेशी आक्रमणकारियों से उनकी रक्षा करने के लिए किया जाता था यह कोई प्रथा नहीं थी यह उपाय मात्र था। परंतु हमारी इतिहास की किताबों द्वारा हमें सिर्फ वही बात बताई गई जिससे हमारे मन में हमारे धर्म के प्रति हीन भावना उत्पन्न हों।

अब जानते हैं कि बाल विवाह का अंत कैसे हुआ? इसके विरुद्ध क्या-क्या नियम बनाए गए और किसके द्वारा बनाए गए? यह भी एक चर्चा का विषय है!

बाल विवाह को समाप्त करने के लिए इतिहास में अनेकों नाम दिए जाते हैं जिनमें प्रमुख राजा राममोहन राय, केशव चंद्र सेन आदि नाम शामिल हैं जिन्होंने ब्रिटिश सरकार के साथ मिलकर स्पेशल मैरिज एक्ट लागू करवाया। जिसके तहत लड़कों की शादी की उम्र 18 वर्ष और लड़कियों की शादी की उम्र 14 वर्ष कर दी गई। परंतु एक बात सोचने की है कि जिन ब्रिटिशों ने भारत पर हमला

किया, भारतीय नारियों की इज्जत लूटी, उनको बंदी बनाकर रखा, उनको प्रताड़ित किया, जिन विदेशियों द्वारा महिलाओं का शोषण किया गया उन विदेशियों द्वारा समाज की महिलाओं का दुख नहीं देखा गया। कमाल की बात बनाते हैं ये अंग्रेज!

यह चलन अब तो प्रतिबंधित है परंतु हमें यह बात ध्यान रखनी चाहिए कि यह भारत की देन नहीं है, सनातन धर्म की देन नहीं है, अपितु यह विदेशी आक्रांताओं द्वारा दिया गया तोहफा है जिसको आज तक हमने सहेज के रखा है!

वामपंथियों द्वारा जिन-जिन प्रथाओं को गलत दर्शाया गया, उन सभी को हमारे धार्मिक ग्रंथों से या फिर किसी ना किसी भगवान के अवतार से जरूर जोड़ा गया था जिस से वह सही प्रतीत हो। परंतु वे यह भूल गए कि भारत में एक नहीं अपितु अनेकों ग्रंथ हैं जो एक दूसरे से मिलते हैं, जिनका आपस में सम्बंध होता है। बाल विवाह के विषय में कहा गया कि राम जी और सीता जी का विवाह बाल्यावस्था में हो गया था जिसके पीछे वाल्मीकि रामायण के अरण्यकाण्ड के श्लोकों को साक्ष्य के रूप में दिया जाता है जिसमें माता सीता रावण को अपना परिचय देती हैं।

वाल्मीकि रामायण के सैंतालीसवें सर्ग के कुछ श्लोकों को आपके सामने रखता हूँ :-

उषित्वा द्वादश समा इक्ष्वाकूणां निवेशने।

भुंजना मानुषान् भोगान् सर्व कामसमृद्धिनी ॥ 4 ॥

अर्थात :- विवाह के उपरांत मैंने बारह वर्ष तक इक्ष्वाकु वंशियों की राजधानी अयोध्या में रह कर, मनुष्य दुर्लभ भोग भोगे और अपने सब मनोरथों को पूर्ण किया।

तत्र त्रयोदशे वर्षे राजामंत्रयत प्रभुः।
अभिषेचयितुं रामं समेतो राजमंत्रिभिः ।। 5 ।।

अर्थात :- तदनन्तर तेरहवें वर्ष महाराज दशरथ ने श्रेष्ठ मंत्रियों से परामर्श कर, श्रीरामचन्द्र का अभिषेक करने का विचार किया।

तस्मिन्संम्रियमाणे तु राघवस्याभिषेचने।
कैकेयी नाम भर्तारमार्याः सा याचते वरम् ।। 6 ।।

अर्थात :- श्रीरामाभिषेक की सब तैयारियाँ होने लगीं, तब कैकेयी ने, जो मेरी सास लगती हैं, महाराज से वर मांगा।

परिगृह्य तु कैकेयी श्वसुरं सुकृतेन मे।
मम प्रव्राजनं भर्तुर्भरतस्याभिषेचनम् ।। 7 ।।

अर्थात :- कैकेयी जी ने, मेरे ससुर को धर्म के वश में कर, मेरे पति के लिये वनवास और भरत के लिये राज्याभिषेक चाहा।

द्वावयाचत भर्तारं सत्यसंधं नृपोत्तमम्।

नाद्य भोक्ष्ये न च स्वप्स्ये न च पास्ये कथञ्चन ।। 8 ।।

अर्थात :- सत्यप्रतिज्ञ व पतिश्रेष्ठ महाराज दशरथ से ये दो वर माँगे। साथ ही यह भी कहा कि, मैं आज न किसी प्रकार भी खाऊँगी, न पीऊंगी और न सोऊंगी।

एष मे जीवितस्यान्तो रामो यद्याभषिच्यते।

इति ब्रुवाणां कैकेयीं श्वशुरो मे स मानदः ।। 9 ।।

अर्थात :- यदि श्रीराम का राज्याभिषेक हुआ तो मैं अपने प्राण दे दूँगी। जब कैकेयी ने इस प्रकार कहा, तब बहुत सन्मान करने वाले मेरे ससुर महाराज दशरथ जी ने

अयाचतार्थैरन्वर्थैर्न च याञ्चां चकार सा।

मम भर्ता महातेजा वयसा पञ्चविंशकः ।। 10 ।।

अर्थात :- कैकेयी से विविध प्रकार के अन्य पदार्थ माँगने के लिये कहा- परन्तु उसने और कुछ न चाहा। उस समय मेरे पति महा तेजस्वी श्रीरामचन्द्र की उम्र 25 वर्ष की थी।

अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनि गण्यते।

रामेति प्रथितो लोके गुणवान् सत्यवाञ्शुचिः ।। 11 ।।

विशालाक्षो महाबाहुः सर्वभूतहिते रतः।

कामार्तस्तु महातेजाः पिता दशरथः स्वयम् ॥ 12 ॥

कैकेय्याः प्रियकामार्थं तं रामं नाभ्यषेचयत्।

अभिषेकाय तु पितुः समीपं राममागतम् ॥ 13 ॥

अर्थात :- और मेरी आयु जन्म काल से गणना करके 18 वर्ष की थी, श्रीरामचन्द्र जो लोक में प्रसिद्ध हैं और जो सुशील, सत्यवादी, पवित्र, बड़े नेत्रों और लंबी वाहुओं वाले हैं तथा सब प्राणियों के हितकारी हैं- उनका, महा तेजस्वी महाराज दशरथ ने कामासक्त हो, कैकेयी को प्रसन्न करने के लिए स्वयं राज्याभिषेक न किया।

इन श्लोकों से पता चलता है कि माता सीता जी के विवाह के समय उनकी उम्र 6 वर्ष थी और राम जी की आयु 13 वर्ष थी, क्योंकि विवाह के उपरांत 12 वर्षों तक उन्होंने महल में निवास किया और फिर जब राम जी को वनवास हुआ तब उनकी आयु 18 वर्ष थी और राम जी की आयु 25 वर्ष थी।

जबकि तुलसीदास जी रामायण में विवाह के समय राम जी की उम्र 27 वर्ष और सीता जी की उम्र 18 वर्ष दे रखी है।

वर्ष अट्ठारह की सिया, सत्ताईस के राम।

कीन्हो मन अभिलाष तब, करनो है सुर काम॥

अर्थात :- तुलसीदास जी सीता जी के विवाह के समय को वर्णित करते हुए कहते हैं कि सीता जी की आयु 18 है और श्री राम जी की आयु 27 है। दोनों एक दूसरे को देख के मोहित हो रहे हैं और उनके मन में विवाह की एक मोहक अभिलाषा है।

(सुर काम अर्थात नेक कार्य, संसार के हित में किया गया कार्य। यह बात हम सब जानते हैं कि श्री राम और माता सी धरती पर अधर्म का नाश करने के लिए ही आए थे इसीलिए दोनों एक दूसरे को देख के मन ही मन प्रसन्न हो रहे हैं।)

परंतु सोचने वाली बात ये है दोनों ही रचनाकारों ने एक ही व्यक्ति की जीवनी लिखी है, अर्थात दोनों ही कवियों द्वारा राम जी के जीवन का वर्णन किया गया है, तो फिर दोनों की रचनाओं में राम जी की आयु में अन्तर कहाँ से आ गया!

और चलो मान भी लेते हैं कि राम जी आयु 13 वर्ष और सीता जी आयु 6 वर्ष रही होगी तो भगवान श्री राम तो हजारों वर्षों तक जीए भी थे।

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति।।

(वाल्मीकि रामायण, बाल कांड, सर्ग 1, श्लोक 97)

अर्थात:– भगवान श्री राम जी ने 11,000 वर्षों तक शासन किया तत्पश्चात वह ब्रह्मलोक को चले गए।

अगर उनसे ही तुलना करनी है तो कम से कम 1000 साल तो जी के दिखाओ!

वाल्मीकि रामायण में लिखे गए इस श्लोक का खंडन बहुत से संस्कृत के विद्वानों द्वारा किया जाता है। उनका मानना है कि ये श्लोक अंग्रेजों द्वारा प्रक्षिप्त किया गया है, अर्थात अंग्रेजों द्वारा इसको गलत ढंग से पेश किया गया है। अब आप कहेंगे कि अंग्रेजों को तो संस्कृत आती नहीं थी, तो फिर उन्होंने ऐसा कैसे किया।

मैं बताता हूँ, अंग्रेजों में से एक व्यक्ति था मैक्स मुलर जिसे "भारतीय शिक्षा मित्र" तक कहा गया क्योंकि उसे संस्कृत आती थी, और इसी कि सहायता से अंग्रेजों ने हमारे ही धार्मिक ग्रंथों में फ़ेर बदल कर दिए। और ये बदलाव ऐसे होते थे कि देखने और सुनने में सच लगते थे। क्योंकि भारत में गुरुकुल प्रणाली लुप्त होती जा रही है, इसीलिए किसी को संस्कृत आती भी नहीं है, और समय के साथ धीरे-धीरे भाषाओं में भी अन्तर आता जा रहा है। ऐसे में सतयुग के काल मैं लिखी गई रामायण आज के समय में समझना मुश्किल हो सकता है।

एक और उदाहरण से समझते हैं, ये बात हम सबको पता है कि माता सीता की तीन बहनें उर्मिला, माधवी और शुतकीर्ति का

विवाह राम जी के तीन भाइयों लक्षमण, भरत और शत्रुघ्न से कराया जाता है जिसके पश्चात वे सभी अपने-अपने जीवन साथी के साथ रहने लगीं। वाल्मीकि रामायण के बाल्यकांड के इस श्लोक के अनुसार :-

रेमिरे मुदिता: सर्वा भर्तृभि: सहिता रह:।

(77 वा सर्ग, 15 वा श्लोक)

यहाँ एक बात सोचने की है कि माता सीता जब 6 वर्ष की थीं तो उनकी बहनों की आयु क्या रही होगी और फिर राम जी के भाइयों की आयु क्या रही होगी? सोचने से ही समझ आ जाता है कि राम जी और सीता जी की आयु के सन्दर्भ में जो बात कही गई है वह सब झूठ है।

परंतु अंग्रेज यह भूल गए की रामायण एक बहुत बड़ा ग्रंथ जिसमें अनेकों श्लोक हैं और प्रत्येक श्लोक को विक्षिप्त करना उनके बस का नहीं था! क्योंकि जब विश्वामित्र जी दशरथ जी से, राम जी को और लक्ष्मण जी को अपने साथ ले जाने आये थे तब अयोध्या आए महर्षि विश्वामित्र को महाराज दशरथ कहते हैं कि, "राम तो अभी किशोर अवस्था में चल रहा है, यह भयंकर राक्षसों से कैसे लड़ेगा?"

सब सुत प्रिय मोहि प्रान की नाईं। राम देत नहिं बनइ गोसाईं।।
कहँ निसिचर अति घोर कठोरा। कहँ सुंदर सुत परम किसोरा।।

अर्थात:- सभी पुत्र मुझे प्राणों के समान प्यारे हैं, उनमें भी हे प्रभो! राम को तो देते नहीं बनता। कहाँ अत्यन्त डरावने और क्रूर राक्षस और कहाँ परम "किशोर अवस्था" के मेरे सुंदर पुत्र!

किशोरावस्था की उम्र 19 वर्ष तक होती है, परंतु यहाँ किशोर शब्द का प्रयोग उम्र बताने के लिए नहीं अपितु पिता का अपने पुत्र के प्रति प्रेम दिखलाने को किया गया है। क्योंकि पुत्र कितना भी बड़ा हो जाए, वह पिता के लिए छोटा ही रहता है।

और यहाँ तो विश्वामित्र जी ने राक्षसों के संहार के लिए पुत्रों को मांगा था, तो कोई पिता तो अपने अधिक उम्र के बच्चों को भी ना भेजे! पर यह सब राक्षसों से संसार के संरक्षण के लिए था, जो सिर्फ राम जी के हाथों ही सम्भव था।

इस कथन से हमें पता चलता है कि श्री राम जी की अवस्था किशोरावस्था से तो अधिक ही रही होगी। यह बात हमें आगे पता चलती है जब वाल्मीकि जी ने राम जी ने राम जी की कद-काठी का वर्णन किया।

अरुन नयन उर बाहु बिसाला।
नील जलज तनु स्याम तमाला।।
कटि पट पीत कसें बर भाथा।
रुचिर चाप सायक दुहुँ हाथा।।

अर्थात:- भगवान के लाल नेत्र हैं, चौड़ी छाती और विशाल भुजाएँ हैं, नील कमल और तमाल के वृक्ष की तरह श्याम शरीर है, पीताम्बर पहने हुए, कमर में सुंदर तरकस कसे हुए हैं। दोनों हाथों में सुंदर धनुष और बाण हैं।

ऐसी कद-काठी तो किसी वयस्क की ही हो सकती है! और यह वर्णन मिथिला जाने से पहले का है जब राम जी सीता जी से मिले भी नहीं थे। जिन लोगों को राम और सीता के विवाह की आयु के बहाने हिंदू संस्कृति और परंपराओं का उपहास करना है, उनकी समस्या सीता और राम का विवाह नहीं, बल्कि कुछ ओर है। हिंदू-विरोध की दुर्भावना उन्हें इस स्तर तक गिरा देती है, यह सोचने का विषय है।

इन साक्ष्यों के माध्यम से हम कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति में बाल विवाह जैसी कुप्रथा नहीं थी और ऐसे ना जाने कितने ही साक्ष्य मैं आपको दिखा सकता हूँ जो यह दर्शाते हैं कि भारतीय संस्कृति में बाल विवाह जैसे प्रथाएं नहीं थीं।

धर्मशास्त्र की बात की जाए तो वहाँ भी दस वर्ष तक की बालिका को "कन्या" और सोलह वर्ष तक की बालिका को "बाला" कहा गया है। कुछ ग्रंथों का मत है कि 16 वर्ष की आयु तक स्त्री "कन्या" होती है। वहीं अनेक धर्मशास्त्रीय ग्रंथों की मान्यता है कि जब तक विवाह न हो जाए, अविवाहिता स्त्री कन्या होती है। कन्या

को लेकर शास्त्रों और शास्त्रकारों के अलग-अलग मत हैं। ऐसे में निश्चित तौर पर ये नहीं कहा जा सकता कि कन्या का अर्थ दस वर्ष से छोटी बालिका ही होती है। अविवाहित बालिका भी कन्या होती है, भले ही उसकी उम्र इससे अधिक हो। इसीलिए भारतीय समाज में लड़की के विवाह के लिए कन्यादान शब्द प्रचलन में है।

वयस्क होने की उम्र विभिन्न काल खंडों में अलग-अलग हो सकती हैं, इसे हम ऐसे समझ सकते हैं कि पहले मनुष्य अधिक समय तक जीवित रहते थे, आज ऐसा नहीं है और हो सकता है भविष्य में ऐसा भी ना रहे। पर इस को आधार मानकर सनातन धर्म को बदनाम करना गलत होगा।

पर हमारी मजबूरी देखिए कि आज हमको हमारे ही धर्म ग्रंथों को सही साबित करने के लिए कितने ही प्रयास करने पड़ते हैं! परंतु सनातन धर्म कभी रुकना नहीं सिखाता, इसीलिए हम यह प्रयास करते रहेंगे!

-------●-------

अध्याय 8
जाति व्यवस्था और वर्ण व्यवस्था

भारतीय संस्कृति में तो वर्ण व्यवस्था प्रचलित थी! तो फिर यह जाति के आधार पर भेदभाव कहाँ से आया?

जो समाज कर्म के आधार पर विभाजित था वह जन्म के आधार पर कैसे विभाजित हो गया?

क्या यह जाति व्यवस्था अंग्रेजों की फूट डालो राज करो की नीति का हिस्सा तो नहीं थी?

वर्ण व्यवस्था

आज भारतीय समाज जाति के आधार पर बंटता चला जा रहा है और शायद आपको सुनने में बुरा लगेगा परंतु ब्राह्मण अपने गुण गाता है, क्षत्रिय अपने गुण गाता है, वैश्य अपने गुण जाता है और शूद्र अपने गुण गाता है। आज हम सभी लोग समाज में एक दूसरे के महत्व को भूलते जा रहे हैं। हम भूलते जा रहे हैं कि सभी एक

दूसरे के पूरक हैं और इनमें से किसी एक की भी कमी समाज को तोड़ सकती है।

चारों वर्ण शरीर के अंगों की तरह हैं। अगर शरीर का कोई अंग खराब होता है, और उसे अलग कर दिया जाए, तो उसकी कमी से शरीर में दुर्बलता आती है। ठीक उसी प्रकार समाज में किसी एक वर्ण की कमी, राष्ट्र को दुर्बल बना सकती है। और इन अंग्रेजों के द्वारा समाज को दुर्बल बनाने का प्रयास किया भी गया है, यह हम सब जानते हैं परंतु फिर भी हम जातिगत आधार पर बंटते चले जा रहे हैं और इसका फायदा विदेशी ताकतें समय-समय पर उठाती रही हैं। समय-समय पर विदेशी ताकतों द्वारा इस खाई को और गहरा बना दिया जाता है और समाज के मन में भेदभाव भर दिया जाता है जिससे सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से राष्ट्र पर विपरीत असर पड़ता है।

आज चाहते हुए भी इस व्यवस्था को खत्म नहीं किया जा सकता क्योंकि हमारा संविधान सब को जाति प्रमाण पत्र दे देता है, वह भी जन्म के आधार पर। तो प्रश्न यह उठता है कि इस भारतीय समाज को कौन बाँट रहा है? सनातन धर्म या फिर कोई और!

विदेशी ताकतें ये अच्छे से जानती हैं कि भारतीय समाज अपनी परंपराओं से जुड़ा हुआ है, अपनी संस्कृति से जुड़ा हुआ है, अपनी वैदिक ग्रंथों से जुड़ा हुआ है, इसीलिए अगर उस पर प्रहार करना है तो उसकी संस्कृति का प्रहार करना पड़ेगा। और यह प्रहार इतना

घातक होता है कि आने वाली पीढ़ी भी इसका असर देखती हैं। क्योंकि संस्कृति किसी भी समाज की नींव होती है, अगर वही कच्ची रहेगी तो समाज में रहने वाले लोग दुर्बल ही रहेंगे। वे इतने दुर्बल होंगे कि किसी भी झोंके से आसानी से गिर सकते हैं।

और इस बात का फायदा अंग्रेजों ने उठाया। उन्होंने समाज को अनुचित जाति व्यवस्था में बाँटकर इसका आरोप सनातन धर्म पर लगाया। उन्होंने बताया की सनातन धर्म में ही जाति व्यवस्था थी जिसके कारण शूद्रों पर अत्याचार किया जाता था। इसी वजह से शूद्रों के मन में हीन भावना उत्पन्न हुई। जिसकी वजह से वह सनातन धर्म से खुद को अलग समझने लगे। और इस बात का तो साक्ष्य देने की भी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह हम सब जानते हैं!

इस बात को सिद्ध करने के लिए अंग्रेजों द्वारा सनातन धर्म के ग्रंथों से विभिन्न उदाहरण दिए जाते हैं जिन को गलत तरीके से पेश कर बताया जाता है और मन में द्वेष भावना उत्पन्न की जाती है। इसमें हमारी शिक्षा व्यवस्था और आरक्षण अपनी-अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। क्योंकि हमारी शिक्षा व्यवस्था बचपन से ही हमें बताती है कि भारत में जाति व्यवस्था है भारतीय समाज विभिन्न जातियों में विभाजित है। और आरक्षण भी इसी जाति व्यवस्था के आधार पर दिया जाता है। यहाँ तक कि चुनाव में भी विभिन्न जातियों के मतों को देखा जाता है। कौन सी जाति के कितने प्रतिशत मतदाता हैं उसी हिसाब से उम्मीदवार तय किया जाता है।

जब हमारी आंखों के सामने ही दिन प्रतिदिन जाति के आधार पर कार्य होते दिखेंगे तो हमारे मन से यह भेदभाव दूर कैसे होगा? और अगर सच्चाई की बात की जाए तो कोई इस भेदभाव को दूर करना भी नहीं चाहता क्योंकि उन्हें इसमें फायदा होता है। बोलना तो नहीं चाहिए पर यह फायदा हर कोई उठाता है चाहे वह ब्राह्मण हो, चाहे क्षत्रिय हो, चाहे वैश्य हो या फिर शूद्र!

पर इतना बड़ा भेदभाव पैदा करने की क्षमता अंग्रेजों में नहीं थी। इसीलिए उन्हें किसी ना किसी दलाल की आवश्यकता जरूर हुई होगी जिसने भारतीय संस्कृति का सौदा कर बीच की दलाली खाई होगी।

अब प्रश्न यह उठता है कि जाति शब्द आया कहाँ से और यह जाति व्यवस्था किसने बनाई और आखिर क्यों?

हम सब जानते हैं कि भारत में अलग-अलग जगहों से लुटेरे आते रहे हैं, जिनमें पुर्तगाली भी शामिल थे। जब वे भारत आए तो उन्होंने देखा कि भारत में तो बहुत विभिन्नताएं हैं। यहाँ के व्यक्ति अलग-अलग कार्य करते हैं। कोई पूजा-पाठ करता है, कोई धनार्जन का कार्य करता है, कोई राष्ट्र की रक्षा के लिए खड़ा है तो कोई दूसरों की सहायता करता है। इतनी व्यवस्थाएं देखकर उनका सर चकरा गया! चकराना भी चाहिए। क्योंकि जहाँ से वह आए थे वहाँ लूटपाट के अलावा और कोई कार्य था ही नहीं, तो इतना आश्चर्यचकित होना कोई ज्यादा बड़ी बात नहीं है!

इन्हीं विविधताओं का अध्ययन करने के लिए पुर्तगाल के यात्रियों ने जिसमें वास्को डी गामा शामिल था, भारतीय समाज को विभिन्न जातियों और प्रजातियों में विभाजित किया। और यही व्यवस्था आज तक चली आ रही है। इन्होंने जितनी जातियाँ भारत में बतायी हैं, उनमें से एक भी भारतीय धर्म ग्रंथो में नहीं मिलती है।

अंग्रेजों ने हमारे समाज के बारे में जानने के लिए हमारे समाज को विभाजित कर अध्ययन किया था और हम भी अपने समाज को जानने के लिए अंग्रेजों के उसी अध्ययन पर निर्भर हैं, जबकि हमें अपने धर्म ग्रंथों को पढ़ना चाहिए था।

1931 में की गई जातीय जन गणना के अनुसार पिछड़े वर्ग की जातियों की संख्या और जनसंख्या- 1955 में काका कालेकर कमीशन ने अपनी जो रिपोर्ट जमा की थी, उसमें ओबीसी में 2,399 जातियों को शामिल किया था, जिनमें से 837 अति पिछड़ी जातियाँ थीं। वहीं मंडल कमीशन ने 3,743 जातियों को पिछड़ा वर्ग में शामिल किया। **लेकिन क्या इतनी जातियाँ हमारे ग्रंथों में मिलती हैं?**

जितने भी विदेशी भारत आए उन सब का एक ही उद्देश्य था, भारतीय संस्कृति को नष्ट करना जिसके लिए उन्होंने विभिन्न प्रकार के तरीके अपनाए। भारतीय संस्कृति को सबसे ज्यादा नष्ट करने में ईसाई मिशनरियों का योगदान रहा।

ईसाइयों द्वारा आर्थिक सहायता देकर लोगों का धर्म परिवर्तित कराया जाता था, क्योंकि अंग्रेजों के शासन काल में भारतीय लोग पूरी तरह से दुर्बल हो चुके थे, खाने को खाना नहीं, पहनने को कपड़े नहीं, रहने को घर नहीं!

ऐसी स्थिति में उनके पास धर्म परिवर्तित करने के अलावा कोई दूसरा विकल्प नहीं था। क्योंकि जब कोई व्यक्ति आर्थिक रूप से कमजोर होता है तो वह किसी भी प्रकार का कार्य करने को तैयार हो जाता है, बशर्ते उसे कुछ आर्थिक सहायता मिले। और अंग्रेजों ने तो भारत से लूटा हुआ धन, भारत के लोगों का ही धर्म परिवर्तन कराने में लगा दिया। और हमें बताया गया कि अंग्रेज ना होते तो भारत बेहाल होता! पता नहीं कौन मूर्ख यह कहता है, और कौन मूर्ख यह मानता है!

धन के साथ-साथ भारतीय संस्कृति और वैदिक काल से चली आ रही व्यवस्था को भी गलत ढंग से प्रस्तुत किया। जिस से आर्थिक रूप से कमजोर लोगों के मन में और अधिक हीन भावना डाली जा सके।

और ऐसा हुआ भी!

भारत का समाज धीरे-धीरे बंटता चला गया क्योंकि अंग्रेजों का सीधा प्रहार सनातन संस्कृति के ग्रंथ थे जिनपर संपूर्ण आर्यावर्त विश्वास करता था।

अंग्रेजों द्वारा बहुत सारी ऐतिहासिक घटनाएं गलत ढंग से पेश की गई। आइए जानते हैं!

महाभारत काल में एक बहुत अच्छे धनुर्धर हुए थे जिन्होंने द्रोणाचार्य की प्रतिमा को गुरु मानकर धनुर्विद्या सीखी। उनका नाम था एकलव्य!

अब देखिए इस प्रसंग को बहुत ही अच्छे तरीके से जात-पात में कैसे बाँटा गया। कहा गया कि एकलव्य भील पुत्र था जिसके कारण द्रोणाचार्य ने उन्हें शिक्षा नहीं दी थी क्योंकि द्रोणाचार्य राजकुल के गुरु थे जिसके कारण उन्होंने एक भील पुत्र को शिक्षा देने से इनकार कर दिया। यहाँ बताया गया कि एकलव्य के पिता हिरण्यधनु, एक निषाद थे जो निचली जाति के थे। क्योंकि वह निचली जाति के थे इसलिए द्रोणाचार्य जी ने उन्हें शिक्षा देने से इनकार कर दिया।। पर क्या यह सच है? नहीं!

अब जिसने महाभारत पढ़ी होगी वह अच्छे से जानता होगा कि सच्चाई क्या है, परंतु जो अपने धर्म ग्रंथ नहीं पढ़ना चाहते उनका क्या? और आज के समय में ऐसे लोगों की संख्या अधिक है जो अपने ग्रंथों पर विश्वास नहीं करते, क्योंकि वे उन्हें पिछड़े समाज की निशानी समझते हैं, कमाल की सोच पैदा कर दी है इन वामपंथियों द्वारा!

यह प्रसंग महाभारत के आदि पर्व के 131 वे अध्याय का है। जब एकलव्य ने कुत्ते का मुंह बाणों से भर दिया था वो भी बिना क्षति

पहुँचाए। तब पाण्डु पुत्रों ने उस से परिचय लिया, तब एकलव्य उनसे कहता है कि :-

निषादाधिपतेर्वीरा हिरण्यधनुषः सुतम्।
द्रोणशिष्यं च मां वित्त धनुर्वेदकृतश्रमम् ।। 45 ।।

(महाभारत, आदि पर्व, 131 वे अध्याय)

एकलव्य ने कहा वीरों! आप लोग मुझे निषाद राज हिरण्यधनु का पुत्र तथा द्रोणाचार्य का शिष्य जानें। मैंने धनुर्वेद में विशेष परिश्रम किया है।

हिरण्यधनु निषाद समाज से थे। परंतु वर्तमान के समय की तरह, उस समय निषाद कोई निचली जाती नहीं थी, ये जातियाँ तो अंग्रेजों द्वारा बनाई गई हैं! और समाज को तोड़ने के उद्देश्य से कुछ जातियों को निचले स्तर का दिखाया गया। आप इस बात का अनुमान इसी से लगा सकते हैं कि हिरण्यधनु, मगध के राजा जरासंध के प्रधान सेनापति थे और पूरी महाभारत में एकलव्य को कहीं भी निचली जाती का नहीं बताया गया। तो फिर वह निचली जाती में कैसे चले गए। जातियां तो होती ही नहीं थीं भारत में!

अंग्रेजों और वामपंथियों द्वारा यह बात हम सबसे छिपाई गई, और वह ये अच्छे से जानते थे की भारत की आने वाली पीढ़ी, अपने ग्रंथों को खोल कर देखेगी भी नहीं! लेकिन वो गलत साबित हुए, आज भारतीय युवा अपने धर्म के प्रति उतना ही संवेदनशील है जितना अंग्रेज उसे गलत साबित करने के लिए थे।

एक अन्य घटना जिसका उल्लेख किया जाता है, वह है राम जी द्वारा शम्बूक **ऋषि का किया गया वध, जिन्हें शूद्र जाति का कहा गया। जिस का उल्लेख वाल्मीकि रामायण के उत्तर कांड में मिलता है।**

वाल्मीकि रामायण के उत्तर कांड के 73 वे सर्ग के अनुसार एक बार एक ब्राह्मण का बेटा अकाल मृत्यु को प्राप्त हो गया, अर्थात 14 वर्ष की आयु में ही उसकी मृत्यु हो गई, इस बात से वह ब्राह्मण अत्यंत दुखी हो गया, और इसका दोषारोपण राम जी के ऊपर कर दिया।

न स्मराम्यनृतं ह्युक्तं न च हिंसां स्मराम्यहम्।
सर्वेषां प्राणिनां पापं न स्मरामि कदाचन ।। 7 ।।

केनाद्य दुष्कृतेनायं वाल एव ममात्मजः।
अकृत्वा पितृकार्याणि गंता वैवस्वतक्षयम् ।। 8 ।।

अर्थातः- मुझे स्मरण नहीं कि मैंने किसी से झूठ बोला अथवा कभी जीव हत्या की अथवा कभी कोई अन्य प्रकार का मैंने पाप किया। फिर भी न मालूम किस पाप कर्म के फल से यह बालक अपने पिता की अंत्येष्टि क्रिया किये बिना ही यमलोक को चला गया।

नेदृशं दृष्टपूर्वं मे श्रुतं वा घोरदर्शनम् ।
मृत्युरप्राप्तकालानां रामस्य विपये ह्ययम् ।। 9 ।।

अर्थात:- श्रीराम राज्य में तो ऐसी बड़ी भयानक घटना, न तो कभी देखने में आयी और न सुनने में आयी कि समय के पूर्व ही कोई बालक मर गया हो।

रामस्य दुष्कृतं किञ्चिन्महदस्ति न संशयः।
यथा हि विषयस्थानां वालानां मृत्युरागतः ।। 10 ।।

अर्थात:- अतएव निस्सन्देह श्रीराम ही का कोई बड़ा दुष्कर्म इसका कारण है, जिससे उनके राज्य में बसने वाला यह बालक मरा है।

तब राम जी आश्चर्यपूर्वक सोचते हैं कि उनके कारण इस बालक की मृत्यु कैसे हुई होगी, उनसे ऐसा कौन सा पाप हुआ है जिसकी सजा प्रजा को भुगतनी पड़ रही है। तब नारद जी उनसे कहते हैं कि मैं जो आपको बताने जा रहा हूँ उसे सुनकर आपको जो करना है वो करियेगा। नारदजी बताते हैं कि सतयुग में केवल ब्राह्मणों को ही पूजा अनुष्ठान करने का अधिकार था। जब त्रेतायुग आया तो पीछे-पीछे क्षत्रीयों को भी पूजा का अधिकार मिला। परंतु त्रेतायुग में वैश्यों और शूद्रों को पूजा का अधिकार नहीं है। वैश्यों को द्वापरयुग में अधिकार मिला और शूद्रों को कलयुग में। जैसे-जैसे धर्म के चरण टूटते गए वैसे-वैसे अन्य वर्णों को भी पूजा का अधिकार मिलता गया।

त्रिभ्यो युगेभ्यस्त्रीन्वर्णान् धर्मश्च परिनिष्ठितः।

न शूद्रो लभते धर्मं युगतस्तु नरर्षभ ।। 26 ।।

(वाल्मीकि रामायण, उत्तर कांड, 74 वा सर्ग)

अर्थातः- इस प्रकार युग-युग में तपरूपी धर्म तीन वर्णों में प्रतिष्ठित हुआ है। किन्तु हे नरश्रेष्ठ! इन तीनों युगों (सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग) में शूद्रों को तप का अधिकार नहीं है।

नारदजी आगे कहते हैं कि :-

हीनवर्णो नृपश्रेष्ठ तप्यते सुमहत्तपः ।

भविष्यच्छूद्रयोन्यां हि तपश्चर्या कलौ युगे ।। 27 ।।

(वाल्मीकि रामायण, उत्तर कांड, 74 वा सर्ग)

अर्थातः- हे नृपश्रेष्ठ ! परन्तु हीन वर्ण शूद्र भी बड़ा तप करता है। किन्तु कलियुग ही में, शूद्र योनि में उत्पन्न जीव तप करेंगे।

अधर्मः परमो राजन् द्वापरे शुद्रजन्मनः।

स वै विषयपर्यन्ते तव राजन्महातपाः ।। 28 ।।

अद्य तप्यति दुर्बुद्धिस्तेन वालवधो ह्ययम्।

यो ह्यधर्मकार्यं वा विषये पार्थिवस्य तु ।। 29 ।।

(वाल्मीकि रामायण, उत्तर कांड, 74 वा सर्ग)

अर्थातः- हे राजन् ! यदि द्वापर में शूद्र तप करे, तो भी बड़ा अधर्म है; किन्तु आपके राज्य में तो इसी समय एक महा तपस्वी

दुर्बुद्धि शूद्र, तप करता है। इसी से इस ब्राह्मण का बालक मरा है। क्योंकि जिस राजा के राज्य में कोई अधर्म या प्रकार्य होता है वहाँ दरिद्रता फैलती है।

दुष्कृतं यत्र पश्येथास्तत्र यत्नं समाचर।
एवं चेद्धर्मवृद्धिश्च नृणां चायुर्विवर्धनम्।
भविष्यति नरश्रेष्ठ वालस्यास्य च जीवितम् ।। 33 ।।

(वाल्मीकि रामायण, उत्तर कांड, 74 वा सर्ग)

अर्थात:- हे नरश्रेष्ठ ! जहाँ कहीं आप पाप होता देखें, वहाँ-वहाँ प्रयत्न पूर्वक उसको रोकिए। ऐसा करने से धर्म की वृद्धि होगी, मनुष्यों की आयु बढ़ेगी और यह मरा हुआ ब्राह्मण बालक भी जी उठेगा।

ऐसा सुनकर राम जी लक्ष्मण जी को राज्य का कार्य सौंपकर अपने राज्य में देखने निकले कि वह व्यक्ति कौन है जो इतनी तपस्या कर रहा है। पश्चिम दिशा को खोजा पर वहाँ कोई ना मिला, इसके बाद पूर्व दिशा में भी कोई ना मिला और उत्तर दिशा में भी कोई ना मिला फिर जब दक्षिण दिशा में गए तब कहीं उन्हें एक पेड़ पर उल्टे लटके हुए एक ऋषि मिले। पूछने पर उन्होंने बताया कि वह एक शूद्र हैं।

दक्षिणां दिशमाक्रामत्ततो राजर्पिनन्दनः।
शैवलस्योत्तरे पार्श्वे ददर्श सुमहत्सरः ।। 13 ।।

(वाल्मीकि रामायण, उत्तर कांड, 75 वा सर्ग)

अर्थात:- राजर्षिनन्दन श्रीरामचन्द्र जी पूर्व दिशा से दक्षिण दिशा में आए। वहाँ उन्होंने विन्ध्याचल के उत्तर पार्श्व में शैवल पर्वत की ओर एक बड़े तालाब को देखा।

तस्मिन्सरसि तप्यन्तं तापसं मुमहत्तपः।

ददर्श राघवः श्रीमाँल्लम्वमानमधोमुखम् ।। 14 ।।

(वाल्मीकि रामायण, उत्तर कांड, 75 वा सर्ग)

अर्थात:- महा तपस्वी श्रीमान् रामचन्द्र जी ने एक ऐसे तपस्वी को देखा, जो नोचे को मुख कर लटकता हुआ, तपस्या कर रहा था।

राघवस्तमुपागम्य तप्यन्तं तप उत्तमम्।

उवाच च नृपो वाक्यं धन्यस्त्वमसि मुव्रत ।। 5।।

(वाल्मीकि रामायण, उत्तर कांड, 75 वा सर्ग)

अर्थात:- श्रीरामचन्द्र जी उस उत्तम प्रकार से तप करने वाले के पास जा कर कहने लगे- हे सुव्रत धन्य है तुमको।

कस्यां यान्यां तपोवृद्ध वर्तसे दृढविक्रम।

कौतूहलात् त्वां पृच्छामि रामो दाशरथिर्ह्यहम् ।। 16 ।।

(वाल्मीकि रामायण, उत्तर कांड, 75 वा सर्ग)

अर्थात:- हे दृढ़ विक्रमी तपोवृद्ध ! भला यह तो बतलाओ कि, तुम्हारी जाति कौन सी है? तुमसे यह मैं कौतूहल वश पूछ रहा हूँ। मैं महाराज दशरथ का पुत्र हूँ और मेरा नाम राम है।

राम जी के बार-बार उस वृद्ध की तपस्या करने का उद्देश्य पूछने पर वह उनसे कहता है कि:-

शूद्रयोन्यां प्रजातोऽस्मि तप उग्रं समास्थितः।
देवत्वं प्रार्थये राम सशरीरो महायशः।। 2 ।।

(वाल्मीकि रामायण, उत्तर कांड, 76 वा सर्ग)

अर्थात:- हे राम ! मैं शूद्र हूँ शूद्र कुल में मेरा जन्म हुआ है। मैं इसी शरीर से स्वर्ग जाने की कामना से अथवा दिव्यत्व प्राप्त करने की इच्छा से ऐसा उग्र तप कर रहा हूँ।

न मिथ्याहं वदे राम देवलोकजिगीषया।
शूई मां विद्धि काकुत्स्थ शम्बूको नाम नामतः ।। 3 ।।

(वाल्मीकि रामायण, उत्तर कांड, 76 वा सर्ग)

अर्थात:- हे प्रभो ! मैं देवलोक जाना चाहता हूँ। अतः झूठ नहीं बोलता। मुझे आप शूद्र जानिये। मेरा नाम शम्बूक है।

ऐसा सुनते ही राम जी ने अपनी तलवार निकाली और उनका सर धड़ से अलग कर दिया।

भाषतस्तस्य शूद्रस्य खड्गं सुरुचिरप्रभम्।
निष्कृष्य कोशाद्विमलं शिरश्चिच्छेद राघवः ॥ 4 ॥

(वाल्मीकि रामायण, उत्तर कांड, 76 वा सर्ग)

अर्थात:- उस शूद्र के मुख से यह वचन सुनते ही, श्रीरामचन्द्र ने चमचमाती तलवार म्यान से खींच ली और उससे उस शूद्र का सिर काट डाला।

राम जी द्वारा किए गए इस कार्य के लिए सभी देवी देवताओं ने उनकी प्रशंसा करी।

तस्मिन्शूद्रे हते देवाः सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः।
साधु साध्विति काकुत्स्थं ते शशंसुर्मुहुर्मुहुः ॥ 5 ॥

(वाल्मीकि रामायण, उत्तर कांड, 76 वा सर्ग)

अर्थात:- उसका सिर कटते हो, इन्द्र और अग्नि सहित समस्त देवता 'धन्य-धन्य " कह कर श्रीरामचन्द्र जी की प्रशंसा करने लगे।

जिस प्रकार से यह प्रसंग हम सुनते हैं, उससे एक बात स्पष्ट है कि इससे लोगों के मन में श्री राम जी के चरित्र पर प्रश्न उठते होंगे।

बहुत सारे विद्वानों का मानना है कि उत्तर कांड कभी असली वाल्मीकि रामायण का हिस्सा नहीं रहा, क्योंकि जितने भी विक्षेपण

मिलते हैं, वह इसी कांड में क्यों मिलते हैं, किसी अन्य कांड में क्यों नहीं। परंतु जैसा कि मनुष्य का स्वभाव है, अगर उसे भगवान के किसी कार्य को करने के पीछे का कारण समझ नहीं आता तो वह उस कार्य को ही झुठला देता है। जो कि पूर्णतः गलत है! हमें उस कार्य को करने के पीछे का कारण समझना चाहिए। हम सबको पता है कि "हरि अनंत हरि कथा अनंता"। अर्थात जिन प्रभु की लीलाओं को कभी-कभी ऋषि मुनि भी नहीं समझ पाते तो हम मनुष्य तो बहुत छोटी वस्तु हैं। वामपंथियों द्वारा कहा जाता है कि शंबूक का वध इसीलिए किया गया था क्योंकि वह एक शूद्र था। परंतु शंबूक को इसीलिए नहीं मारा था क्योंकि वह शूद्र था अपितु इसके पीछे का कारण कुछ और है जिसे आपको स्वयं जानना होगा। मैं तो बस आपको इस पुस्तक में कुछ ऐसे तर्क दूँगा जो वामपंथियों द्वारा दिए गए तर्कों का विरोध करते हों।

जैसे कि, राम जी एक क्षत्रिय राजा थे, जो निहत्थे पर प्रहर नहीं करते थे, और वृद्ध पर तो कदापि नहीं। तो फिर वह एक वृद्ध का सिर कैसे काट सकते हैं। और अगर मारना था ही तो अपनी सेना को भी तो भेज सकते थे। वह स्वयं ही क्यों गए।

जब जन्म के हिसाब से मनुष्य के वर्ण तय नहीं होते तो उस व्यक्ति को शूद्र कैसे कहा जा सकता है। अगर वह पूजा कर रहा था तो इस हिसाब से वह ब्राह्मण हुआ, क्योंकि वर्ण तो कर्म के आधार पर निश्चित होते थे। तो उसकी हत्या का कोई सवाल ही नहीं बनता।

वामपंथियों की ऐसी बहुत सारी बातें हैं जिनका सच्चाई से कोई लेना देना नहीं है। क्योंकि अगर सनातन संस्कृति में भगवान श्री राम को मर्यादा पुरुषोत्तम कहा गया है तो वह ऐसे ही नहीं कहा गया होगा, उसके पीछे कोई ना कोई कारण अवश्य होगा। जहाँ कहीं भी धर्म की बात आती है वहाँ भगवान श्री राम को अवश्य याद किया जाता है, उसके पीछे भी कोई ना कोई कारण अवश्य है जिसे समझने की जिम्मेदारी हम सब की बनती है। हमें समझना चाहिए!

ऐसे तर्कों से हम कह सकते हैं कि राम जी और भारतीय संस्कृति पर लगाया गया ये लांछन गलत है।

अगर हमें शंबूक वध के सही प्रसंग को जानना है तो हमें वाल्मीकि जी द्वारा लिखित आनंद रामायण और अद्भुत रामायण को अवश्य पढ़ना चाहिए, जहाँ हमें प्रत्येक प्रश्नों के उत्तर मिल जाएंगे। भगवान श्रीराम 11,000 वर्षों तक इस धरती पर रहे थे।

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति।।
(वाल्मीकि रामायण, बाल कांड, सर्ग 1, श्लोक 97)

अर्थात:– भगवान श्री राम जी ने 11,000 वर्षों तक शासन किया तत्पश्चात वह ब्रह्मलोक को चले गए।

जिस रामायण को हम पढ़ते हैं उस रामायण में वाल्मीकि जी ने भगवान श्री राम के 50 वर्षों तक की लीलाओं का वर्णन किया है। बाकी के 10,950 वर्षों की लीलाओं का वर्णन वाल्मीकि जी ने

आनंद रामायण और अद्भुत रामायण में किया है। जिसे हमें पढ़ना चाहिए!

वामपंथियों द्वारा रामचरित मानस की एक और चौपाई पर खूब बवाल मचाया जाता है। वह है :-

ढोल गँवार सूद्र पशु नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी।

यही तो अंग्रेजों और वामपंथियों द्वारा किया गया कि हमारे धार्मिक श्लोकों को आधा अधूरा दिखाया। और आधा अधूरा ज्ञान किसी विष के समान होता है। और यह विष हमारे समाज में ऊंच-नीच की भावना के रूप में घुल गया है।

लेकिन क्या गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस चौपाई में कुछ गलत लिखा था क्या?

पहले जानते हैं कि पूरी चौपाई क्या थी:-

प्रभु भल किन्ह मोहि सिख दीनी,
मरजादा पुनि तुम्हरी किन्ही।
ढोल गंवार सूद्र पशु नारी,
सकल ताड़ना के अधिकारी।।
(सुंदर कांड, रामचरित मानस)

ये कथन समुद्र देव ने श्री राम जी से कहे थे। जब तीन दिन बीतने के बाद भी विनम्रतापूर्वक समुद्र ने लंका जाने का रास्ता नहीं दिया तो राम जी ने क्रोधित होकर अपने बाण से समुद्री को सुखाना चाहा।

तब समुद्र देव ने सामने आकर विनम्रतापूर्वक क्षमा मांगी और कहा कि अच्छा हुआ प्रभु आपने मुझ जड़ स्वभाव वाले को सीख दी अर्थात मुझे ज्ञान दिया, परंतु मेरा यह जड़ स्वभाव प्रकृति की ही देन है, अर्थात आपने ही मेरा यह स्वभाव बनाया है इसीलिए मैंने इसका पालन किया। परंतु समय-समय पर आपको मुझे यह सीख देते रहना चाहिए।

यहाँ तुलसीदास जी ने काव्यांश पूरा करने के लिए कुछ पंक्तियाँ जोड़ी और कहा कि, "क्योंकि ढोल, गँवार, शूद्र, पशु और नारी यह सब ताड़ना के अधिकारी होते हैं"।

इस बात पर बवाल मचाने से पहले हिन्दी व्याकरण समझ लिया होता तो दिक्कत ना आती। हिन्दी व्याकरण में एक अलंकार होता है "श्लेष अलंकार", इस अलंकार के अंतर्गत काव्य रचनाओं में एक शब्द का प्रयोग अनेकों अर्थों में किया जाता है। इसी अलंकार का प्रयोग इन पंक्तियों में भी किया गया है।

यहाँ ताड़ना शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों के साथ किया गया है। जिस ताड़ना शब्द का अर्थ वामपंथियों द्वारा बताया गया वह है सिर्फ "पीटना"। परंतु आप खुद सोचिए कि गोस्वामी तुलसीदास ऐसी बात कर सकते हैं? नहीं ना!

ये तो अंग्रेजों की समाज को तोड़ने की चाल थी।

यहाँ ताड़ना शब्द के विभिन्न आशय हैं जैसे बजाना, देखना, देख-भाल करना, शिक्षित करना। अर्थात ढोल को जब तक बजाओगे नहीं तब तक वह बजेगा नहीं। अगर कोई गँवार है अर्थात कोई अशिक्षित है तो उसे शिक्षा देनी चाहिए उसे पढ़ाना चाहिए। स्त्रियाँ समाज का महत्वपूर्ण अंग हैं इसीलिए स्त्रियों की देखभाल करनी चाहिए। पशुओं को भी देख-रेख में रखना चाहिए क्योंकि पहले पशु भी परिवार का हिस्सा होते थे इसीलिए उन पर भी बराबर ध्यान देना चाहिए। अब बात होती है शूद्रों की, तो शूद्र कोई जाती नहीं है, शूद्र का अर्थ होता है सहायता करने वाला। तो यहाँ तुलसीदास जी कहते हैं कि जिसने आपकी सहायता करी है उसका भी ध्यान रखो, उसका सम्मान करो।

पर मैकाले की शिक्षा पद्धति ने सब कुछ बिगाड़ के रख दिया है। इसने समाज को ऊंच नीच में बांट दिया, और लोगों के मन में इतना भेद भाव भर दिया कि आज वो कुछ सुनना नहीं चाहते हैं, अगर उन्हें कुछ बताओ तो सबूत मांगते हैं। लेकिन सबूत लायें कहाँ से, वो तो बचे ही नहीं।

इस शिक्षा पद्धति ने हमारे मन में शुरू से ही यह बात डाल दी है कि भारत में जातिगत भेद भाव होता था, जिसकी वजह से तथाकथित निचली जाती के लोगों ने बौद्ध और सिक्ख धर्म अपना लिए। और इस बात का प्रचार कैसे किया गया देखिए। वामपंथियों द्वारा कहा गया कि, "जिस सनातन धर्म में राम जी को मर्यादा

पुरुषोत्तम कहा जाता है क्योंकि उन्होंने धर्म की रक्षा के लिए एक शूद्र को मारा था, उस सनातन धर्म का पालन आप कैसे कर सकते हैं, इस सनातन धर्म में आप सभी पर अत्याचार ही होते आए हैं, और आज भी हो रहे हैं। इसीलिए आप अपना धर्म परिवर्तन कर लीजिए"।

लेकिन इन मूर्खों को कौन बताये की बौद्ध और सिक्ख मत सनातन धर्म से अलग नहीं हैं। और अगर अलग होते तो बौद्धों की जातक कथाओं में रामायण के पत्रों का जिक्र है? क्यों गुरु ग्रंथ साहिब में भी भगवान श्री राम को आदर्श माना जाता है?

बौद्धों की जातक कथाओं में रामायण के पात्रों का जिक्र :-

हिंदू धर्म में सतयुग में उत्पन्न हुए राजा हरिश्चंद्र की दानवीरता का अकसर जिक्र आता हैं। इन्हीं राजा हरिश्चंद्र की कथा को महावेस्सन्तर जातक (547) में संकलित किया गया है, जिसके अंतर्गत दान परिमिता का महत्व बताया गया है। कट्ठहारी जातक (7) में शकुंतला का प्रकरण ज्यों का त्यों दिया गया। सुत्तभस्त जातक (402) और महाजनक जातक (359) में मिथिला के राजा जनक का विस्तृत वर्णन किया गया है।

वहीं दशरथ जातक (461) में राजा दशरथ, तथा राम को बोधिसत्व राम के रूप में लिखा गया है, लखन कुमार और सीता

का भी वर्णन मिलता है। साम जातक (540) में पितृ भक्त श्रमण कुमार का उल्लेख किया गया है।

गुरु ग्रंथ साहिब में राम जी का जिक्र :-

जिन्हें हिंदू शास्त्रों में भगवान विष्णु कहा जाता है उन हरि नाम का श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी में बार-बार भगवान शब्द के रूप में प्रयोग किया गया है। इसी तरह राम नाम का प्रयोग भी किया गया है। प्रभु और गोपाल शब्द का भी बार-बार उल्लेख किया गया है।

जिसके कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं:-

साधो राम सरनि बिसरामा ।। बेद पुरान पड़े को इह गुन सिमरे हरि को नामा ।।१।।

(रागु गउड़ी: पृष्ठ 220, श्री गुरु ग्रंथ साहिब)

अर्थात :- वेद पुराण आदि इस बात के साक्षी हैं कि मुक्ति पाने का एकमात्र रास्ता की प्राणी को राम की शरण में जाकर विश्राम करना चाहिए और राम नाम का सिमरन करना चाहिए।

कहु नानक सोई नर सुखीआ राम नाम गुन गावै।।

(रागु गउड़ी: पृष्ठ 220, श्री गुरु ग्रंथ साहिब)

अर्थात :- श्री गुरु तेग बहादुर जी कहते हैं कि वही नर सुखी है जो राम नाम का गुणगान करता है।

आजु कालि फुनि तोही ग्रसि है समझि राखउ चीति ।। कहै नानकु रामु भजि लै जातु अउसरु बीत ।।२।।१।।

(पृष्ठ 631, श्री गुरु ग्रंथ साहिब)

अर्थात:- यह काल का फन आज ही तुझे अपना ग्रास बनाने को तैयार है। अर्थात समय बीता जा रहा है और इसमें चूक करना भारी भूल होगी। इसीलिए जितना समय मिला है उसमें राम का भजन करना उचित रहेगा।

अब आप खुद सोचिए कि बौद्ध मत में भी श्री राम का जिक्र है और सिक्ख मत में भी श्री राम का जिक्र है। इसका अर्थ तो यही हुआ कि बौद्ध और सिक्ख मत को मानने वाले भी श्री राम से प्रेरित रहे होंगे, अर्थात उनका जुड़ाव सनातन धर्म से ही रहा होगा। तो फिर इन सब के बीच दूरियाँ लाने के लिए कौन जिम्मेदार है।

बौद्ध और सिक्ख मत में बताये जाने वाले श्री राम वही हैं जिनका उल्लेख सनातन धर्म के ग्रंथों में मिलता है। परंतु समाज को गलत ढंग से समझाये जाने के कारण तथाकथित निचली जाती के लोगों ने, जो कभी निचले थे ही नहीं, बौद्ध और सिक्ख मत अपना लिया। दिक्कत ये नहीं है कि उन्होंने बौद्ध या सिक्ख मत अपनाए अपितु दिक्कत ये है कि वे इन्हें सनातन धर्म से अलग समझते हैं। बौद्ध, सिक्ख और जैन मत सनातन धर्म से अलग नहीं हैं। सिर्फ पूजा करने का तरीका अलग है। बाकी हैं तो सब सनातनी। हमें तो पता है कि हम अलग नहीं हैं पर जिन्हें नहीं पता वह बवाल मचाते हैं।

उन्हें मैं बता देना चाहता हूँ कि बौद्ध मत कि स्थापना सनातन धर्म के विरोध में नहीं अपितु सनातन धर्म को सही ढंग से बताने और सनातन के पुराने स्वरूप को खोजने के लिए हुई थी। वहीं सिक्ख मत कि स्थापना सनातन धर्म की रक्षा के लिए हुई थी। सिक्ख भाइयों का सनातन धर्म की रक्षा में एक बहुत बड़ा योगदान है। परंतु आज जब वही भारत से अलग होने की बात करते हैं तो बुरा लगता है।

यह सब उन देश के सौदागरों के कारण हुआ है जो अपने फायदे के लिए कुछ भी कर सकते हैं, और ऐसे बहुत से उदाहरण हमारे सामने आते रहते हैं, परंतु फिर भी हम भटक जाएं, तो इसमें गलती हमारी ही है।

वामपंथियों द्वारा तो यहाँ तक कहा गया कि बौद्ध और सिक्ख मत को ज्यादातर निचली जाती के लोग ही अपनाते हैं। अरे भैया भारत में तो अंग्रेजों द्वारा जैसी जातियाँ बनाई गई हैं, ऐसी कोई जातियाँ ही नहीं थीं, तो ऊंची और नीची की बात तो बहुत दूर की है!

अब जानते हैं कि भारतीय धर्म ग्रंथ इस विषय में क्या कहते हैं। सनातन धर्म में बताई गई वर्ण व्यवस्था का महत्व क्या था? अखिर क्यों इस व्यवस्था का निर्माण किया गया था? और वास्तव में जाति किसे कहा जाता है?

सर्वप्रथम हमें यह जानना होगा कि हमारे वेदों में सभी वर्णों के विषय में क्या लिखा है। पर उससे पहले हमें अंग्रेजों और वामपंथियों द्वारा बतायी गयी शूद्रों की परिभाषा को भुलाना होगा।

ऋग्वेद के अनुसार :-

यस्य विश्वानि हस्तयोः पञ्च क्षितीनां वसु।
स्पाशयस्व यो अस्मधुग्दिव्येनवाशनिर्जहि ।।3।।

(ऋग्वेद, प्रथम मंडल, सूक्त 176)

अर्थात:- हे इंद्र देव! आपके हाथों में पांचों प्रकार की प्रजाओं की वैभव संपदा है। ऐसे आप हमारे विद्रोहियों को परास्त करें और आकाश से गिरने वाली विद्युत के समान ही उनको नष्ट करें।

इस मंत्र में अगस्त्य मैत्रावरुणि, पांचों प्रकार की प्रजाओं अर्थात ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद को खुश रखने वाले इंद्र देव की अर्चना करते हुए कहते हैं कि इन प्रजाओं को दुख देने वाले को आप अपनी शक्ति से नष्ट करें। अर्थात यहाँ सभी प्रकार की प्रजाओं के मंगल हेतु प्रार्थना की गई है। यहाँ किसी भी प्रकार का भेद भाव नहीं किया गया।

वयमग्ने अर्वता वा सुवीर्यं ब्रह्मणा वा चितयेमा जनाँ अति।
अस्माकं द्युम्नमधि पञ्च कृष्टिषूच्चा स्वर्ण शुशुचीत दुष्टरम् ।।10।।

(ऋग्वेद, द्वितीय मंडल, सूक्त 2)

अर्थात:- हे अग्निदेव! हम पराक्रम अथवा ज्ञान के द्वारा सामर्थ्यवान बनकर मानव समुदाय में श्रेष्ठ बनें। हमारा उच्च स्तरीय, अनंत तथा दूसरों के लिए अप्राप्त धन, समाज के पाँचों वर्णों में सूर्य की तरह प्रकाशित हो।

यहाँ गृत्समद भार्गव शौनक ऋषि अग्निदेव की स्तुति करते हुए कहते हैं कि यजमान इतना सामर्थ्यवान और श्रेष्ठ बने जिससे वह अपना धन उन समाज के पाँच वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद) के उन लोगों तक पहुँचा सकें जो इसे पाने में असमर्थ हैं। अर्थात यहाँ पर भी सभी वर्णों को समान दृष्टि से ही देखा गया है। और यहाँ असमर्थ व्यक्ति की सहायता का भाव विद्यमान है।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ।।12।।

(ऋग्वेद, दशम मंडल, सूक्त 90)

अर्थात:- अर्थात पुरुष के विराट शरीर में ब्राह्मण उनका मुख कहलाते हैं। क्षत्रिय उनकी भुजाएं कहलाते हैं। इनकी दोनों जंघा वैश्य और दोनों चरण शूद्र कहलाते हैं।

इस पुरुष सूक्त में ब्रह्मांड की रचना करने वाले सर्वव्यापक विराट पुरुष की व्यापकता को दर्शाते हुए कहा है कि उन विराट पुरुष के मुख को ब्राह्मण कहा गया,उनकी भुजाओं को क्षत्रिय कहा गया, जंघाओं को वैश्य कहा गया और चरणों को शूद्र कहा गया। परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि शूद्रों को चरण कहा गया तो वह निचले समाज के हो गए।

ब्राह्मण को मुख इसलिए कहा गया क्योंकि जिस प्रकार मुख शरीर को सही दिशा देखने में सहायता करता है ठीक उसी प्रकार समाज को सही दिशा देने का कार्य ब्राह्मण करते हैं। क्षत्रिय को हाथ इसीलिए कहा गया क्योंकि जिस प्रकार हाथों की सहायता से शरीर की रक्षा की जाती है, अर्थात शरीर को बाहरी प्रहारों से बचाया जाता है, उसी प्रकार समाज को बाहरी ताकतों से बचाने के लिए क्षत्रिय होते हैं। वैश्यों को जंघा इसीलिए कहा गया क्योंकि जिस प्रकार जांघ की हड्डी शरीर को आंतरिक मजबूती प्रदान करती है ठीक उसी प्रकार वैश्य भी समाज की आर्थिक व्यवस्था सुधारकर समाज को आंतरिक मजबूती प्रदान करता है। शूद्रों को पैर इसीलिए कहा गया क्योंकि पैर शरीर के संचालन के लिए सहायक होते हैं, अगर पैर ही नहीं होंगे तो शरीर एक जगह बैठ जाएगा ठीक उसी प्रकार अगर समाज में सहायक नहीं होंगे तो समाज के बाकी सभी कार्य स्थिर हो जाएंगे और समाज की प्रगति रुक जाएगी। उन्हीं सहायकों को शूद्र कहा गया।

उसी ऋग्वेद में आगे लिखा है कि पृथ्वी भी पुरुष के चरण से उत्पन्न हुई है तो इसका अर्थ भी यही हुआ ना कि प्रथ्वी भी अछूत है। तो क्यों रह रहे हो प्रथ्वी पर? छोड़ दो!

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ।।14।।

(ऋग्वेद, दशम मंडल, सूक्त 90)

अर्थात:- पुरुष की नाभि से अंतरिक्ष, शीश से द्युलोक, चरणों से भूमि व कान से दिशाएं और लोक उत्पन्न हुए।

यह वर्ण व्यवस्था हमारे वेदों में गूढ़ भाषा में बतायी गयी थी जिसे समझने के लिए हमें वेदों को पढ़ना होगा नहीं तो कोई कुछ भी कहेगा और हम उसकी बातों पर विश्वास कर लेंगे।

अथर्ववेद में भी हर जगह समानता की ही बात की गई है, कहीं भी यह देखने को नहीं मिलता कि शूद्र निचले समाज से थे, या फिर उनके साथ शोषण होता था। यहाँ तो हर जगह समरसता और प्रेम का भाव विद्यमान है। उदाहरणार्थ:-

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ।।1।।

(अथर्ववेद, 19 वा कांड, सूक्त 62)

अर्थात:- हे अग्नि! तुम मुझे देवों का प्रिय बनाओ। तुम मुझे राजाओं का भी प्रिय बनाओ। अर्थात मुझे सभी देखने वालों का, चाहे वह शूद्र हो चाहे वह आर्य हो। मैं सभी का प्रिय बनूँ।

यहाँ पर भी सभी का प्रिय बनने के लिए अग्नि देव से प्रार्थना करी जा रही है। अब कोई भी व्यक्ति किसी का प्रिय तभी बनेगा जब वह उसके साथ अच्छा व्यवहार करेगा। यानी कि वैदिक काल में सभी इस प्रयत्न में लगे रहते थे कि वो सभी के प्रिय बनें। इसका अर्थ यह हुआ कि वह एक दूसरे के साथ अच्छा व्यवहार करते होंगे। तो शूद्रों के शोषण की बात कहाँ से आ गई? ये सोचने वाली बात है!

यजुर्वेद के अनुसार:-

रुचन्नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ।।47।।

(यजुर्वेद, पूर्वार्ध, 18 वा अध्याय)

अर्थात:- हे अग्निदेव! हमारे लिए ज्योति धारिए, ब्राह्मणों व क्षत्रियों में ज्योति स्थापित कीजिए, वैश्यों और शूद्रों में भी ज्योति स्थापित कीजिए। मेरे लिए ज्योति धारिए। हम सबको ज्योतिषमान बनाने की कृपा करें।

यहाँ भी ज्योतिषमान बनाने की प्रार्थना सभी के लिए की जा है। किसी भी प्रकार का भेद भाव नहीं है। तो फिर हम कैसे कह सकते हैं भारतीय समाज में भेद भाव होता था।

यजुर्वेद में चारों वर्णों का कर्म बताते हुए कहा है कि:-

ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रं तमसे तस्करं नारकाय वीरहणं पाप्मने क्लीब माक्रयाया ऽ अयोगूं कामाय पुंश्चलूमतिक्रुष्टाय मागधम् ।।5।।

(यजुर्वेद, उत्तरार्ध, 30 वा अध्याय)

अर्थात:- जैसे चोर के लिए अंधकार, नरक के लिए वीरघातक, नपुंसक के लिए पाप, खरीद के लिए पुरुषार्थी, काम के लिए व्यभिचारी उपयुक्त होता है। अच्छी बोलने की शक्ति के लिए प्रमाण देने वाला उपयुक्त होता है। ठीक उसी प्रकार ब्राह्मण के

लिए ब्रह्मज्ञान, क्षत्रिय के लिए रक्षण, वैश्य के लिए पालन पोषण, शूद्र के लिए सेवा कर्तव्य उपयुक्त हैं।

अब यहाँ सेवा कार्य से आशय ये नहीं है कि शूद्रों का शोषण किया जाता था क्योंकि वह उनके सेवक थे। सेवा कार्य से तात्पर्य यह है कि शूद्र अपनी सेवा बाकी के तीन वर्णों को देते थे जिसके बदले में उन्हें धन दिया जाता था।

आज के परिप्रेक्ष्य में देखें तो किसी भी संस्था में कार्यरत सभी कर्मचारी वेतन प्राप्त करते हैं, तो क्या इसका तात्पर्य यह है कि उनका शोषण होता है? नहीं!

जिस प्रकार वैदिक काल कर्म के आधार पर व्यक्ति को विभाजित किया जाता था ठीक उसी प्रकार आज भी किया जाता है। आज जो भी व्यक्ति किसी दूसरे के यहाँ कार्यरत है, उन सभी को वेदों की भाषा में शूद्र कहा गया था। अब अगर किसी शूद्र का बेटा अपना व्यापार करता है तो वह वैश्य कहलायेगा। अगर किसी शूद्र का बेटा दिशा निर्देश देने का कार्य करता है तो वह ब्राह्मण कहलायेगा। अगर किसी ब्राह्मण का बेटा किसी वैश्य के यहाँ कार्यरत है तो वह शूद्र होगा। अगर किसी वैश्य का बेटा राष्ट्र रक्षा के लिए खड़ा है तो वह क्षत्रिय होगा। अगर किसी क्षत्रिय का बेटा ब्राह्मण के यहाँ कार्यरत है तो वह शूद्र होगा। यह सब कुछ कर्म के आधार पर तय होता था ना कि जन्म के आधार पर!

जो व्यवस्था वैदिक काल में थी वही आज भी चली आ रही है। लेकिन अंग्रेजों की नीति देखिए कि खुद को उच्चतम कोटि का साबित करने के लिए वेदों में बनाई गई व्यवस्था को तो गलत बताया और हमें गुमराह किया। परंतु उसी व्यवस्था को नकल कर हमारे सामने, अपने नाम से प्रस्तुत किया जिससे हमारे भीतर उनके प्रति द्वेष भावना ना जागे।

गीता का भी एक प्रसिद्ध श्लोक है जिसे हम सब ने सुना ही होगा:-

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ।।13।।

(श्रीमद्भागवत गीता, अध्याय 4)

अर्थात:- श्री कृष्ण कहते हैं कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र- इन चार वर्णों का समूह, गुण और कर्मों के आधार पर मेरे द्वारा रचा गया है। इस प्रकार उस सृष्टि-रचनादि कर्म का कर्ता होने पर भी मुझ अविनाशी परमेश्वर को तू वास्तव में अकर्ता ही जान।

यहाँ स्पष्ट लिखा हुआ है कि व्यक्ति को गुण और कर्म को ही आधार पर ही विभाजित किया गया था ना कि जन्म के आधार पर।

और गीता में आगे सभी वर्णों के कर्म भी बताये गये हैं:-

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ।।41।।

(श्रीमद्भागवत गीता, अध्याय 18)

अर्थात:- हे परंतप! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के तथा शूद्रों के कर्म स्वभाव से उत्पन्न गुणों द्वारा विभक्त किये गये हैं।

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ।।42।।

(श्रीमद्भागवत गीता, अध्याय 18)

अर्थात:- अन्तःकरण का निग्रह करना, इन्द्रियों का दमन करना, धर्म पालन के लिये कष्ट सहना, बाहर- भीतर से शुद्ध रहना, दूसरों के अपराधों को क्षमा करना, मन, इन्द्रिय और शरीर को सरल रखना; वेद, शास्त्र, ईश्वर और परलोक आदि में श्रद्धा रखना, वेद-शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन करना और परमात्मा के तत्त्व का अनुभव करना। ये सब-के-सब ही ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं।

शौर्य तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ।।43।।

(श्रीमद्भागवत गीता, अध्याय 18)

अर्थात:- शूरवीरता, तेज, धैर्य, चतुरता और युद्ध में न भागना, दान देना और स्वामी भाव, ये सब-के-सब ही क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं।

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ।।44।।

(श्रीमद्भागवत गीता, अध्याय 18)

अर्थात:- खेती, गौपालन और क्रय-विक्रय रूप सत्य व्यवहार, ये वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं। तथा सब वर्णों की सेवा करना शूद्र का भी स्वाभाविक कर्म है।

सनातन धर्म में बतायी गयी वर्ण व्यवस्था व्यक्ति के स्वभाव पर आधारित थी। जो अंग्रेजों द्वारा बनाई गई जाती व्यवस्था के ठीक विपरीत थी। अंग्रेजों ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इनको पदानुक्रम में लगाया, अर्थात एक के ऊपर एक, जिसमें शूद्रों को सबसे नीचे रखा गया। जिसके कारण सामाजिक भेदभाव बढ़ने लगा। अंग्रेजों द्वारा बनाई गई इस व्यवस्था को हम नीचे दिए गए चित्र के माध्यम से समझ सकते हैं :-

ब्राह्मण
क्षत्रीय
वैश्य
शूद्र

विदेशियों द्वारा बनाई गई जाति व्यवस्था
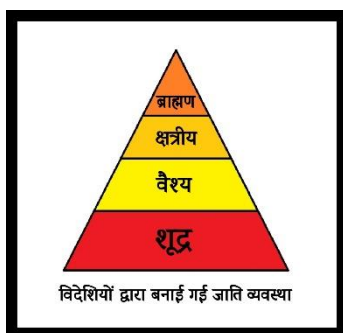
जबकि सनातन धर्म कहता है कि चारों वर्ण, जन्म के आधार पर नहीं अपितु व्यक्ति के स्वभाव के आधार पर बनाए गए थे। मूलतः व्यक्ति के अनेक प्रकार के स्वभाव देखे जा सकते हैं। जैसे किसी में

मार्गदर्शन देने की योग्यता होती है, जिसे हमनें ब्राह्मण कहा। किसी के शरीर में शक्ति होती है जिसका प्रयोग राष्ट्र रक्षा के लिए होता है, जिसे हमनें क्षत्रिय कहा। किसी का मस्तिष्क व्यापार में रेहता है, वह देश की आर्थिक व्यवस्था को सशक्त करने का कार्य करता है, जिसे हमनें वैश्य कहा। किसी का स्वभाव सहयोगात्मक होता है। वह कुछ भी कार्य कर लेगा इसीलिए वह सभी की सहायता करता है, जिसे हमनें शूद्र कहा। इन्हें स्वभाव के आधार पर वर्गीकृत किया गया था ना कि जन्म के आधार पर!

प्रत्येक का महत्व एक दूसरे के लिए था, और अगर समाज में किसी एक भी कमी होगी तो वह उसी अपंग शरीर की भांति होगा जिसका कोई अंग कार्य नहीं करता। इसे हम निम्न बने हुए चित्र से समझ सकते हैं:-

शूद्र
वैश्य
ब्राह्मण
क्षत्रीय
राष्ट्र

भारतीय संस्कृति और शास्त्रों में बनाई गई वर्ण व्यवस्था
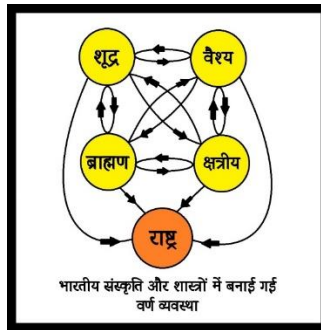
अब जानते हैं कि वैदिक काल में जाति किसे कहते थे।

किसी भी वस्तु के उद्गम के आधार पर उसकी जातियाँ तय होती थीं, पर इसका अर्थ भी अंग्रेजों और वामपंथियों द्वारा बनाई गई जातियों के विपरीत था। न्याय सूत्र कहता है कि:-

समानप्रसवात्मिका जातिः॥

अर्थात:- जिनके जन्म का मूल स्रोत एक होता है, अर्थात जिनका जन्म लेने का तरीका एक समान है, जो किसी अन्य जाति में परिवर्तित नहीं हो सकते, जिनकी शारीरिक बनावट एक जैसी है। उन्हें एक प्रकार की जाति कहा जाता है।

ऋषियों द्वारा प्राथमिक तौर पर जन्म-जातियों को चार स्थूल विभागों में बांटा गया है:-

1. **उद्भिज:-** अर्थात धरती में से उगने वाले जैसे पेड़, पौधे, लता आदि।
2. **अंडज:-** अर्थात अंडे से निकलने वाले जैसे पक्षी, सर्प आदि।
3. **पिंडज:-** अर्थात स्तनधारी- मनुष्य और पशु आदि।
4. **उष्मज:-** अर्थात तापमान तथा परिवेशीय स्थितियों की अनुकूलता के योग से उत्पन्न होने वाले- जैसे सूक्ष्म जीवाणु आदि।

हर जाति विशेष के प्राणियों में शारीरिक अंगों की समानता पाई जाती है। एक जन्म-जाति दूसरी जाति में कभी भी परिवर्तित नहीं हो सकती है और न ही भिन्न जातियाँ आपस में संतान उत्पन्न कर सकती हैं। अतः जाति ईश्वर निर्मित है। विविध प्राणी जैसे हाथी, सिंह, खरगोश इत्यादि भिन्न-भिन्न जातियाँ हैं। इसी प्रकार संपूर्ण मानव समाज एक जाति है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र किसी भी तरह भिन्न जातियाँ नहीं हो सकती हैं क्योंकि न तो उनमें परस्पर शारीरिक बनावट का भेद है और न ही उनके जन्म स्त्रोत में भिन्नता पाई जाती है। अब यहाँ जाति का अर्थ वह नहीं है जो अंग्रेजों ने बताया था।

दरअसल हमको आदत हो गई है अंग्रेजी भाषा को आधुनिक समझने की! अगर हमसे कोई बात अंग्रेजी में कही जाए तो हम आसानी से उसे मान लेंगे परंतु वही बात हिन्दी या संस्कृत में कही जाए तो सर पर पहाड़ टूट जाए! बहुत अच्छी सोच बना ली है हमनें।

अगर "Species" कहा जाए तो ठीक है, पर "जाति" कह दिया जाए तो जन्म के आधार पर भेद-भाव होता है। अगर "Employee" कह दिया जाए तो ठीक है, पर शूद्र कह दिया जाए तो शोषण हो रहा है। इस सोच को बदलना होगा, हमारे दिमाग में अब तक जो भी भरा गया वो सब मिटाना होगा, नहीं तो समाज

बंटता चला जाएगा, और समाज को बांटने वाले अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेंगे।

हमारा दुर्भाग्य देखिए कि आज वेदों की इन मौलिक शिक्षाओं को हमनें भुला दिया है, जिन्हें हमारी संस्कृति की आधारशिला समझा जाता है। आज हम जन्म पर आधारित जाति व्यवस्था को मानने तथा तथाकथित शूद्र समझी जाने वाली जातियों में जन्में व्यक्तियों के साथ भेद-भाव पूर्ण व्यवहार आदि करने की गलत अवधारणाओं में हम फँस गए हैं।

तथाकथित कम्युनिस्ट वामपंथी समाज सुधारकों की भ्रामक कपोल कल्पनाओं ने पहले ही समाज में अलगाव के बीज बो कर अत्यंत क्षति पहुंचाई है। दुर्भाग्यवश दलित कहे जाने वाले लोग खुद को समाज की मुख्य धारा से कटा हुआ महसूस करते हैं। इस का एकमात्र समाधान यही है कि हमें अपनी जड़ों की ओर लौटना होगा, अर्थात हमें वेदों की ओर लौटना होगा और हमारी पारस्परिक समझ को पुनः स्थापित करना होगा।

-------●-------

अध्याय 9

डाकन प्रथा: भारत की देन नहीं!

क्या नारियों को डाकन या डायन कहना और फिर उनकी हत्या कर देना भारतीय संस्कृति का हिस्सा था?

ये डायन प्रथा जैसी कुरीति भारत जैसे समृद्धिशाली देश में कहाँ से आयी?

क्या यह भी अंग्रेजों द्वारा भारत को गुलाम बनाये रखने के लिए चली गयी कोई चाल थी?

भारतीय समाज की तथाकथित डायन

सर्वप्रथम हमें जानना चाहिए कि डायन प्रथा थी क्या और यह सिर्फ आदिवासी इलाकों तक ही सीमित क्यों रह गई?

वामपंथियों द्वारा जो झूठ फैलाया गया था वह सिर्फ सनातन धर्म को बदनाम करने के लिए तथा भारत को गुलाम बनाए रखने के

लिए था। उसका वास्तविकता से कोई मतलब नहीं था। और जैसा कि कहते हैं कि झूठ अगर बार-बार बोला जाए तो वह सच लगने लगता है। और लोगों ने सच ऐसा माना कि वह भी इस षड्यंत्र में फंस गए और अनेकों स्त्रियों को कला जादू के आरोप में सजा दी गई, जैसे उन्हें जिंदा जला दिया गया, मारा गया पीता गया, और अनेकों प्रकार के वीभत्स यातनाएं उन निर्दोष महिलाओं को झेलनी पड़ी। अंग्रेजों और उनकी विचारधारा से प्रेरित तथाकथित वामपंथी समाज सुधारकों द्वारा कहा गया कि, "भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में लोग जादू-टोने जैसी अंधविश्वास की गतिविधियों में संलग्न रहते थे।

जब गाँव में फसल की पैदावार अच्छी नहीं होती थी, किसी परिवार की आर्थिक स्थिति खराब हो जाती थी, या किसी के परिवार में बच्चे का स्वास्थ्य खराब हो जाए या कोई व्यक्ति अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाए, तो ऐसी स्थिति में ग्रामीण लोग इन सारी घटनाओं का जिम्मेदार किसी निचली जात की महिला ठहरा देते थे।

और उस महिला को डायन कहकर अनेकों यातनाएं दी जाती थीं। जैसे उल्टा लटका के मारना, आंखों में मिर्च डाल देना, पेड़ से बांधकर पीटना आदि। इस अंधविश्वास का अधिकतर शिकार महिलाएं ही होती थीं, खासकर निचली जात की महिलाएं!"

हमारे झूठे इतिहास में बताया गया कि, "अगर किसी व्यक्ति के पड़ोस में कोई निचली जात का परिवार रहता था, और उस व्यक्ति के साथ कोई अनहोनी हो जाती थी तो उसका सारा दोष उसी

परिवार के माथे थोप दिया था। ऐसे आरोप अधिकतर इसीलिए लगाए जाते थे ताकि उस परिवार की सम्पत्ति पर कब्जा किया जा सके”।

पेड़ से उल्टा लटकाकर तथाकथित डायन को तड़पाना

अब षड्यंत्र देखिए किस स्तर तक का रचा गया था। वामपंथियों द्वारा ये कहा गया कि, “भारत में इसका कोई लिखित इतिहास तो नहीं मिलता क्योंकि ऐसे कार्य गाँव के लोगों द्वारा भीड़ में किए जाते थे और इसका किसी सरकारी दस्तावेज में उल्लेख भी नहीं दिया जाता था”। अब इनसे कोई पूछे कि तुमनें जिस इतिहास को विक्षिप्त किया था, वह भी तो लिखित में था! अगर लिखित में अभिलेख थे ही नहीं तो तुमनें विक्षेपण कैसे कर दिए? मतलब इतिहास में ऐसी कोई घटना मिली ही नहीं तो तुमनें ये कह दिया कि भारत में लोग लिखित अभिलेख रखते ही नहीं थे! क्या दिमाग पाया है इन वामपंथियों ने।

यहाँ एक बात सोचने वाली है कि वामपंथियों ने अगर भारत में ऐसी कहानियाँ बनाई हैं तो कहीं ना कहीं तो उन्होंने ऐसा देखा होगा। इतना दिमाग तो था नहीं की अपने मन से कोई भी कहानी बना दें। बिलकुल! उन्होंने ऐसा देखा था, भारत में नहीं बल्कि खुद ही के देश यूरोप में! और ये मैं नहीं कह रहा बल्कि यह तो नैशनल कैथौलिक रिपोर्टर में 25 अक्टूबर, 2017 में दिया गया एक लेख कह रहा है। इसमें लिखा है कि, "1450 से 1750 के दशक में सम्भवतः 1,00,000 से अधिक चुड़ैलों को मारा गया था"। और सबसे अधिक महिलाएं ही इसका शिकार बनती थीं। यह बात सिर्फ एक लेख में नहीं अपितु अनेकों लेखों में यही बात लिखी हुई है।

“The Witch Hunt in Early Modern Europe” नामक पुस्तक में ब्रायन प. लेवाक लिखते हैं कि लगभग 1450 से लेकर 1750 के दशक में, अर्थात यूरोपीय इतिहास के आरंभिक आधुनिक काल में, हज़ारों महिलाओं को डायन के आरोप में मार डाला गया था। वह आगे लिखते हैं कि 16 वी सदी के अंत तक अनेकों शिक्षित यूरोपीय नागरिकों का मानना था कि डायन न केवल खतरनाक जादू करती हैं, अपितु वह अनेकों प्रकार की शैतानी गतिविधियों में भी लिप्त रहती हैं।

“Berkeley Law” के अनुसार आरम्भिक आधुनिक यूरोप में डायन पकड़ने की प्रक्रिया में दो लहरें आईं, पहली लहर 15 वी

एवं शुरुआती 16 वी शताब्दी में आई और दूसरी लहर 17 वी शताब्दी में आई जिसमें डायनों को समूचे यूरोप में देखा गया था। परन्तु सबसे अधिक डायनों को दक्षिण पश्चिमी जर्मनी में देखा गया था, जहाँ पर 1561 से लेकर 1670 तक सबसे ज्यादा 90,000 डायनों को पकड़ने और मारने के सिलसिले सामने आए। परंतु भारतीय इतिहास में ऐसा कोई भी साक्ष्य नहीं मिलता जिसमें ऐसी कोई घटना घटी हो जिसके कारण किसी महिला को डायन समझ कर प्रताड़ित किया गया हो।

तो फिर भारतीय इतिहास में आज हम इस घटना को क्यों पढ़ रहे हैं?

अंग्रेजों ने भारत पर अपना आधिपत्य, युद्ध के द्वारा नहीं अपितु भारतीय संस्कृति को नष्ट करके जमाया था। भारत का ऐसा कोई भी राज्य नहीं था जिसे अंग्रेजों ने युद्ध में जीता हो। उन्होंने प्रत्येक राज्य में संधि की थी वह भी चालाकी से। पहले उस राज्य को अपनी नीतियों से कमजोर किया और फिर उस पर अपना आधिपत्य जमाने के लिए संधि की और उनकी यही चालाकी हर जगह दिखाई देती है। उन्होंने समाज को कमजोर करने के लिए "फूट डालो राज करो" की नीति को अपनाया। अंग्रेज यह भली-भांति जानते थे कि भारत अपनी संस्कृति के लिए जाना जाता है, भारत अपने इतिहास के लिए जाना जाता है। और अगर भारत पर अपना आधिपत्य जमाना है तो उसकी संस्कृति, उसके इतिहास को मिटाना पड़ेगा। Pइसलिए

उन्होंने प्रत्येक स्थान पर फेरबदल किए चाहे वह भारतीय इतिहास हो या भारतीय संस्कृति।

अगर हम डायन प्रथा के इतिहास को देखें जो अंग्रेजों और वामपंथी इतिहासकारों द्वारा हमें बताया गया, तो कुछ तथ्यों पर हमें ध्यान देना चाहिए जो डायन प्रथा के इतिहास को सही बताने तथा सनातन धर्म को बदनाम करने के लिए प्रयोग में लाए गए थे।

अंग्रेजों द्वारा दिए गए प्रत्येक तथ्य के पीछे गहरी कूटनीति थी जिसके तहत उन्होंने भारतीय समाज को आपस में बाँटकर तोड़ा था। उन सभी तथ्यों पर हमें प्रश्न करने चाहिए। जैसे कि:-

- **हमें बताया गया कि डायन प्रथा ग्रामीण क्षेत्रों में पाई जाती थी। अब प्रश्न यह उठता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में ही क्यों शहरी क्षेत्रों में क्यों नहीं? जिन ग्रामीण क्षेत्रों में लोग खेती-बाड़ी में संलग्न रहते थे, उन ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों के पास इतना समय था क्या, कि वह किसी को डायन बताकर उसे प्रताड़ित करें?**

औपनिवेशिक काल के दौरान अंग्रेजों ने भारत के ग्रामीण क्षेत्रों को अपने आधीन बनाने की कोशिश करी। क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में खेती के लिए अधिक भूमि थी, इसीलिए ग्रामीण लोगों को उन्होंने मनाना चाहा परंतु वे नहीं माने। जिसके कारण अंग्रेजों ने उनके मन में एक दूसरे के प्रति हीन भावना उत्पन्न करना शुरू किया। अब गांव के लोग ठहरे भोले-भाले, आ

गए अंग्रेजों की बातों में! अगर अंग्रेज ग्रामीण लोगों से युद्ध लड़ते तो मुँह की खाते क्योंकि ग्रामीण लोगों की ताकत तो उनके खान-पान से ही झलकती है। इसीलिए उन्होंने उनके भोलेपन का फायदा उठाया। अंग्रेजों ने जो डायन यूरोप की निर्दोष महिलाओं में देखी थी, उन्हें वही डायन भारतीय महिलाओं में भी दिखी। जिसके कारण उन्होंने गाँव के लोगों के मन में यह विचार डालना शुरू कर दिया और उनके मन में एक डर बैठा दिया, जिसके कारण ग्रामीण लोगों को भी समाज की महिलाओं में डायन नजर आने लगी। और वहीं से इस कुरीति की शुरुआत हुई।

- **अंग्रेजों द्वारा कहा गया कि भारतीय समाज अंधविश्वास में फँसा हुआ था, इसीलिए वहाँ महिलाओं को डायन मानने जैसी कुरीतियां शामिल थीं। अब प्रश्न यह उठता है कि जिस समाज में प्रत्येक वस्तु का सटीक तर्क सही तथ्य सहित दिया जाता था, वह समाज अंधविश्वासी कैसे हो गया?**

अंधविश्वास का अर्थ होता है किसी पर भी बिना सोचे समझे विश्वास कर लेना, अर्थात किसी पर भी आंख बंद करके विश्वास कर लेना अंधविश्वास होता है। परंतु भारतीय संस्कृति में तो हर कार्य के पीछे कोई ना कोई तर्क अवश्य दिया जाता था और वो भी तथ्यों के साथ। बिना तथ्यों के तो आज तक भारतीय ऋषि मुनियों ने बात नहीं की! तो फिर ये कहना कि

भारतीय अंधविश्वासी थे, कुछ हजम नहीं होता। अब लुटेरों की सभ्यता से आने वाले को क्या ही पता कि सभ्य समाज किसे कहते हैं, जैसा उन्होंने अपने यहाँ देखा था वही उन्होंने यहाँ देखा। इसमें आश्चर्यचकित होने वाली बात क्या है!

- **वामपंथियों द्वारा कहा गया कि ग्रामीण क्षेत्रों में अगर कोई बीमार हो जाता था तो वह झोला छाप चिकित्सकों के पास जाते थे जो उन्हें अंधविश्वास की राह में धकेल देते थे। अब प्रश्न उठता है कि भारतीय चिकित्सक क्या सच में झोला छाप चिकित्सक थे?**

इस बात का उत्तर तो स्वयं अंग्रेज देते हैं! इन्हीं का एक सिपाही था कर्नल कूट जिसकी हैदर अली ने नाक काट दी थी क्योंकि उस समय मुगलों का भी भारत पर आधिपत्य था इसीलिए कभी-कभी अंग्रेजों का सामना इनसे भी हो जाता था। जब कर्नल कूट की नाक काट दी गई तो वह बहुत दिनों तक तो ऐसे ही घूमता रहा। फिर कुछ दिनों बाद उसे एक व्यक्ति मिला जिसने उसे दिलासा दिलाते हुए कहा कि तेरी कटी हुई ना को तो मैं ही जोड़ सकता हूँ। और फिर 30 दिनों के बाद उस व्यक्ति की नाक जुड़ भी गई। जिस व्यक्ति ने उसकी नाक जोड़ी वह नाई समुदाय से था, जिसे आज हम पिछड़ा मानने हैं!

3 महीने बाद जब वह UK की संसद में पहुंचा तो वहाँ पर उसने बताया कि भारत में ऐसी भी विद्याएं हैं तो अंग्रेजों को बड़ा आश्चर्य

हुआ और वह भी इन विद्याओं को सीखने के लिए भारत आए। और उन्हें पता चला कि ऐसी विद्या भारत के हर गाँव में सिखाई जाती है। 1792 के दशक में जब थॉमस क्रूस नामक एक अंग्रेज भारत में शल्य चिकित्सा की विद्या सीखने आया तब उसने अपनी डायरी में बताया कि उसके गुरु भी नाई जाति के थे। उसने अपने गुरु के सानिध्य में एक मराठा सैनिक के दोनों हाथ जोड़ दिए जिसके दोनों हाथ कटे हुए थे। उसने यह विद्या बिलकुल निशुल्क सीखी थी। और ये अंग्रेज कहते हैं कि भारत में अनुभवी चिकित्सकों की कमी थी। और हम भारतीय मान भी लेते हैं।

- **अंग्रेजों द्वारा यह कहा गया कि डायन प्रथा के कारण निचली जाती कि महिलाओं को ही प्रताड़ित किया जाता था। अब प्रश्न वही उठता है कि भारत में तो ऊंच नीच के आधार पर कोई जातियाँ थी ही नहीं तो जिन महिलाओं पर अत्याचार हुआ वो निचली जाती कि कैसे हो गईं?**

इस प्रश्न का उत्तर हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं। भारतीय समाज को बांटने के लिए ही अंग्रेजों द्वारा ये जन्म आधारित जातियाँ बनाई गईं थीं। अब समाज को तोड़ने के लिए कुछ ना कुछ तो तिकड़म लगानी पड़ती! इसीलिए नीची और ऊंची जातियाँ बनाकर उच्च जाति के लोगों के मन में निचली जाति के लोगों के प्रति हीन भावना उत्पन्न कर दी। इसके लिए उन्होंने धर्म की आड़ लेकर अपने द्वारा ही बनाई गईं उच्च जाति के लोगों से ये कह दिया कि भारत

में तो निचली जातियाँ जादू टोना करती हैं। और निचली जातियों के लोगों से ये कहता दिया कि उच्च जाति के लोग तुम्हारे अत्याचार करते हैं। जिसके कारण लोगों के मन में ऐसी फूट पड़ी कि वह आज तक चली आ रही है।

- **अंग्रेजों द्वारा बताया गया कि डायन प्रथा का अधिकतर शिकार महिलाएं ही होती थीं। अब प्रश्न उठता है कि महिलाएं ही क्यों पुरुष क्यों नहीं?**

एक ओर तो अंग्रेजों द्वारा बताया गया कि भारतीय समाज पुरुष प्रधान समाज था तो फिर जादू टोने का अधिकार महिलाओं को कैसे मिल गया? एक ओर तो कहा जाता है कि महिलाओं को पूजा पाठ का अधिकार नहीं था वहीं दूसरी ओर महिलाएं जादू टोना कर रहीं हैं। महिलाएं भगवान की पूजा नहीं कर सकतीं लेकिन शैतान की पूजा कर सकतीं हैं। क्या तर्क दिए जाते थे इन अंग्रेजों के द्वारा!

जिन अंग्रेजों के यहाँ महिलाओं को सिर्फ भोग की वस्तु समझा जाता था, जहाँ प्रतिदिन महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार होता था, वही अंग्रेज भारत में आकर कहते हैं कि भारत में महिलाओं का सम्मान नहीं होता। उन अंग्रेजों को भारतीय महिलाओं की चिंता सताने लगी जिन्होंने अपने शासन के दौरान लाखों महिलाओं का शोषण किया। मगर भारतीय इतिहास में लिख दिया कि महिलाओं का शोषण भारतीय संस्कृति का हिस्सा है, भारतीय समाज पुरुष प्रधान समाज है जहाँ महिलाओं को कोई अधिकार नहीं दिए जाते थे। यह तो सिर्फ भारतीय समाज को तोड़ने के लिए रचा गया एक

षड्यंत्र मात्र था, जिसे कुछ बुद्धिजीवी लोगों ने हकीकत मानकर स्त्रियों को प्रताड़ित करना शुरू कर दिया।

- **अंग्रेजों द्वारा कहा गया कि अगर किसी व्यक्ति के पड़ोस में कोई निचली जाती का परिवार रहता था तो उसकी सम्पत्ति हड़पने ले लिए उस पर डायन होने का आरोप लगा दिया जाता था। परंतु प्रश्न यह उठता है कि जिस भारत में कहा गया कि "वसुधैव कुटुंबकम" अर्थात संपूर्ण विश्व ही परिवार है वहाँ अपने ही पड़ोसी के साथ ऐसा दुर्व्यवहार कौन करेगा? जिस भारत में सम्पत्ति दान कर दी जाती थीं, उस भारत में सम्पत्ति हड़पने जैसा लालच कहाँ से आ गया?**

ये लालच भी उन लुटेरों के साथ ही भारत आया जिनके देश में लूटे हुए धन के सौदे को लेकर ही युद्ध हो जाया करते थे। उदाहरणार्थ कोलंबस और वास्को डी गामा दोनों स्पेन और पुर्तगाल के लुटेरे थे। एक दिन जब दोनों के बीच लूटे हुए समान के पीछे लड़ाई हुई तो दोनों चर्च पहुंचे। तब वहाँ के पादरी ने कहा कि लड़ो मत, एक व्यक्ति पश्चिम की ओर चले जाओ और एक व्यक्ति पश्चिम की ओर चले जाओ। तो कोलंबस अमेरिका की ओर चल दिया और वास्को डी गामा भारत आ गया। और अपना लालच भी अपने साथ लेकर आया। भारत आते ही उसनें लोगों को भी लालच देना शुरू किया। अंग्रेजों ने भारत में लोगों को सामंत बनाना शुरू किया जो कर की

वसूली किया करते थे। इन्हीं सामंतों को ऊंची जात का कहा गया और बाकियों को निचली जात का कहा गया। कर ना मिलने की स्थिति में उनपर तरह-तरह के आरोप लगा दिए जाते थे। ऐसा ही आरोप था डायन होने का। अगर कर नहीं दिया गया तो उस परिवार की सम्पत्ति, यह कहकर हड़प ली जाती थी कि यह डायन जैसी शैतानी गतिविधियों में लिप्त हैं। और ऐसे ही लोगों ने धीरे-धीरे मन ही मन में डायन को सच मानना शुरू कर दिया।

- **अंग्रेजों द्वारा यह बताया गया कि जिस महिला को डायन समझा जाता था उससे अपराध स्वीकार करवाने के लिए उसे तरह-तरह की यातनाएं दी जाती थीं। अब प्रश्न यह उठता है कि भारतीय नागरिक इतने वीभत्स कहाँ से हो गए कि निर्दोष महिलाओं को सजा देने लगे?**

जहाँ प्रत्येक महिलाओं को देवी की प्रतिमा समझा जाता था वहाँ महिलाओं का शोषण करना भारतीय संस्कृति के कारण नहीं था। जहाँ हर नारी का सम्मान किया जाता था, जहाँ नारियों के सम्मान के लिए अनेक युद्ध हुए, जहाँ नारियों को अपराध करने पर भी कठोर सजा नहीं दी जाती थीं, वहाँ नारियों को बिना गलती के इतनी वीभत्स यातनाएं कैसे दी जा सकतीं हैं? यह भारत की संस्कृति को कलंकित करने का एक षड्यंत्र था जिसे अंग्रेजों और वामपंथियों द्वारा रचा गया।

- **अंग्रेजों द्वारा यह कहा गया कि भारत के नागरिकों में शिक्षा के प्रति जागरूकता नहीं थी। इसीलिए वह ऐसे अंधविश्वास में फंस जाते थे। अब प्रश्न यह उठता है कि अगर भारत में शिक्षा नहीं थी तो विश्व गुरु किसे कहा जाता था?**

सब जानते हैं कि भारत में नालंदा विश्वविद्यालय, तक्षशिला विश्वविद्यालय, विक्रमशिला विश्वविद्यालय जैसे महान विश्वविद्यालय रहे हैं, जहाँ सम्पूर्ण विश्व से लोग पढ़ने आते थे। जहाँ अनेकों प्रकार की विधाएँ सिखाई जाती थीं वह भी बिना किसी भेद भाव के। अंग्रेजों के अनुसार जब वह भारत आए तब भारत में 90 प्रतिशत से अधिक साक्षरता दर थी। यहाँ का प्रत्येक नागरिक विश्व कल्याण के लिए कार्यरत था। अपार धन सम्पदा का देश भारत आर्थिक स्थिति से कमजोर कैसे हो गया ये सब जानते हैं। 90 प्रतिशत से अधिक साक्षरता दर वाला देश भारत अशिक्षित कैसे हुआ ये भी सब जानते हैं। इसके प्रमाण की क्या आवश्यकता!

भारत को आर्थिक रूप से कमजोर बताकर, भारत से ही लूटा हुआ धन, भारत को ही कर्जे पर देकर, महान बनना कोई अंग्रेजों से सीखे! भारत में ही शिक्षा ग्रहण कर, भारत को अशिक्षित बताना, और समस्त इतिहास में फेरबदल करके भारतीय लोगों को ही यह बात बताना कोई अंग्रेजों से सीखे!

ऐसे और भी बहुत सारे प्रश्न हैं जिन्हें आज हमें पूछने की आवश्यकता है। नहीं तो आने वाली पीढ़ी को भी हमारी ही तरह इसी संदेह में जीना होगा कि भारतीय संस्कृति अच्छी नहीं है, जिसके परिणाम स्वरूप वह कभी भी भारत को अपना नहीं समझेंगे और विदेश में रहने की बातें करते रहेंगे। सभी पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होकर अपनी सभ्य भारतीय संस्कृति को भूल जाएंगे उनके मन में कभी बहु भारत के प्रति सम्मान की भावना नहीं जागेगी।

अगर डायन प्रथा के बारे में बात करें तो यह गतिविधियाँ आज भी भारत के विभिन्न हिस्सों में देखने को मिल जाती है, हालांकि सरकार ने इसे खत्म करने के लिए अनेकों प्रतिबंध लगाएं हैं। परंतु जब अंग्रेजों और वामपंथियों ने ग्रामीण लोगों को धर्म का सहारा लेकर इस प्रथा को बताया था तो यह इतनी आसानी से नष्ट नहीं हो सकती। क्योंकि भारतीय लोग अपने धर्म के प्रति आती संवेदनशील हैं। और फिर इतने सालों की गुलामी के कारण जब उन्हें अपने ही धर्म ग्रंथ विक्षिप्त करके पढ़ाए गए तो पीढ़ी दर पीढ़ी वो सभी विकार लोगों के मन में आ ही जायेंगे जिन्हें अंग्रेजों ने उत्पन्न किया था।

भारत में भी अनेकों महिलाओं की डायन समझकर हत्याएं हुई हैं, जो अत्यंत दुखद है। आज भी विभिन्न आदिवासी इलाकों में यह प्रथा देखने को मिलती है। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार वर्ष 2001 से 2021 तक झारखंड में सबसे ज्यादा, 593 डायन हत्या के मामले सामने आए। ऐसे ही आसाम, बिहार, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, ओड़िशा, आदि स्थानों पर भी डायन हत्या के मामले

सामने आए हैं। परंतु अगर यह भारत की संस्कृति होता तो हर जगह से ऐसे मामले आते। लेकिन ऐसा नहीं है! और जहाँ से यह मामले आते भी हैं वहाँ इनकी संख्या बहुत कम है। इसका अर्थ यह हुआ कि उस राज्य के सभी लोग भी ऐसी कुरीति को नहीं मानते। एक ओर जहाँ यूरोप में साल भर में लाखों महिलाओं को डायन समझ कर मार दिया जाता था वहीं दूसरी ओर भारत में 20 वर्षों में सिर्फ कुछ हजार महिलाएं डायन समझ कर मारी गईं। मैं ये नहीं कहता कि सिर्फ इतने से ही आंकड़े हैं तो कोई बात नहीं, मैं ये कह रहा हूँ कि इतने आंकड़े भी जो आए हैं, वह भारतीय संस्कृति से प्रभावित होकर नहीं अपितु विदेशी आक्रमणकारियों के कारण आए थे।

यहाँ एक बात सोचने की है कि ज्यादातर मामले इन्हीं क्षेत्रों से ही क्यों आए, भारत के अन्य क्षेत्रों से क्यों नहीं?

भारत के इन्हीं क्षेत्रों में संथाल नमक एक जनजाति रहती थी। जिसे भारत की तीसरी सबसे बड़ी जनजाति कहा जाता है। ये लोग इन्हीं स्थानों पर रहते थे जहां से सबसे ज्यादा डायन हत्याओं की घटनाएँ सामने आयीं। तो क्या ये लोग डायन जैसी कुरीति में विश्वास करते थे? नहीं!

संथाल जनजाति एक बहादुर और साहसी जनजाति थी। इन्हें नृत्य करना बहुत अधिक पसंद था। ये राजमहल की पहाड़ियों के इर्दगिर्द रहा करते थे। ये जंगल की उपज से अपनी गुजर-बसर करते थे और झूम खेती किया करते थे। ये जंगल के छोटे से हिस्से में झाड़ियों को

काटकर और घास-फूस को जलाकर जमीन साफ कर लेते थे और राख की पोटाश से उपजाऊ बनी जमीन पर ये पहाड़िया लोग अपने खाने के लिए तरह-तरह की दालें और ज्वार-बाजरा उगा लेते थे। वे अपने कुदाल से जमीन को थोड़ा खुरच लेते थे कुछ वर्षों तक उस साफ की गई जमीन में खेती करते थे और फिर उसे कुछ वर्षों के लिए परती छोड़ कर नए इलाके में चले जाते थे जिससे कि उस जमीन में खोई हुई उर्वरता फिर से उत्पन्न हो जाती थी।

इन्होंने 1855 में कार्नवालिस के स्थायी बंदोबस्त के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। स्थायी बंदोबस्त ईस्ट इंडिया कंपनी और जमींदारों के बीच कर वसूलने से संबंधित एक स्थायी व्यवस्था थी जिसे कार्नवालिस द्वारा 22 मार्च, 1793 को लागू किया गया था। इसी व्यवस्था के कारण संथाल जनजाति के लोगों पर भारी अत्याचार किया गया जिसके कारण मुर्मू समाज के चार भाइयों सिद्धू, कान्हू, चंद और भैरव द्वारा अंग्रेजों के इस कानून के विरोध में विद्रोह किया गया। इस विद्रोह का दमन अंग्रेजों के कैप्टन अलेक्जेंडर ने किया था।

इसी घटना को आधार बनते हुए वामपंथियों ने कहा कि इसी आंदोलन के दौरान संथाल नेताओं ने अनेकों महिलाओं की डायन समझ कर हत्या करी थी। परंतु क्या उनके पास इतना समय था कि एक साथ अंग्रेजों और डायनों, दोनों से लड़ लेते? अगर दोनों घटनाओं को देखें तो समझ आया कि इस पहाड़ी विद्रोह को खत्म करने के लिए अंग्रेजों द्वारा यह षड्यंत्र रचा गया था। क्योंकि अंग्रेज

उनसे ऐसे ही नहीं जीत पाते इसीलिए अपनी कुटिल नीतियों का प्रयोग किया।

अतः हम यह कह सकते हैं कि महिलाओं को डायन समझना भारतीय आदिवासी समाज की कोई परंपरा का हिस्सा नहीं था। यह कलंक भारत के लोगों ने नहीं अपितु विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा लगाया गया था। भारत हमेशा से ही सभ्य था, है और रहेगा।

-------●-------

उपसंहार

वह देवियों सी सम्मानित थीं, परंतु अपमानित नहीं।
वह रत्नों सी शोभित थीं, परंतु शोषित नहीं।
ये तो अंग्रेजों का षड्यंत्र समझो, जिन्होंने स्त्री को कमजोर बनाया!
नहीं तो भारतीय स्त्री भी दुर्गा का रूप थीं, जो किसी से कम नहीं।

- कृष्णांश अग्रवाल

पुस्तक के अंत में हमारे मन में यह प्रश्न उठना चाहिए कि जितनी भी कुप्रथाएं थीं वह महिलाओं को ही निशाने बनकर क्यों बनाई गईं? क्या पुरुषों के लिए कोई प्रथा नहीं थीं?

भारत में स्त्री और पुरुष दोनों को ही बराबर अधिकार दिए जाते थे और दोनों को ही समान नियमों का पालन करना होता था। कहीं पर भी किसी भी प्रकार का भेद भाव नहीं किया जाता था। परंतु अंग्रेजों द्वारा भारतीय समाज को तोड़ने के लिए भारतीय संस्कृति पर प्रतिघात करना जरूरी समझा गया। अब भारतीय समाज में महिलाओं का बहुत आदर था। स्त्रियों को भारत का स्वाभिमान समझा जाता था, भारत का अभिमान समझा जाता था। संपूर्ण विश्व में भारतीय सभ्यता ही एकमात्र ऐसी सभ्यता है जहाँ स्त्रियों को भी भगवान माना गया है। इसीलिए भारत की संस्कृति को नष्ट करने के

लिए अंग्रेजों द्वारा स्त्रियों को चुना गया। जिस वजह से सभी कुप्रथाएं स्त्रियों को ही निशाना बनाकर बनायी गयी थीं।

ऐसा करने से अंग्रेजों को दोहरा लाभ हुआ। एक ओर तो भारतीय संस्कृति नष्ट हो रही थी क्योंकि समाज को पुरुष प्रधान बताया जा रहा था, वहीं दूसरी ओर अंग्रेज भारत पर अपना आधिपत्य जमाने में सफल होते जा रहे थे।

और वह अपने कार्य में इतने सफल हुए कि उनके द्वारा किए गए विक्षेपों की छाया आज भी भारतीय इतिहास और संस्कृति में दिखाई देती है। जैसे आपने देखा होगा कि जितनी भी गालियां आज दी जाती हैं वह सभी महिलाओं को ही सन्दर्भित करते हुए क्यों दी जाती हैं? इसका कारण भी यही है कि अगर किसी को क्षति पहुंचानी हो तो उसके सम्मान की ठेस पहुंचाओ। स्त्रियाँ भारत का सम्मान थीं इसीलिए अंग्रेजों द्वारा उन्हीं को निशाना बनाया गया। और हमें भी इस बात को समझने की जरूरत है कि जिन्होंने हमारा शोषण किया था उन्हीं के द्वारा लिखित इतिहास पर हम भरोसा कैसे कर सकते हैं।

हमें अपने इतिहास को बदलने की आवश्यकता है, उसका संशोधन करना आज हमारी जरूरत है!

यह पुस्तक वामपंथी इतिहासकारों द्वारा रचाए गए उन सभी षड्यंत्रों का गहन विश्लेषण करती है, जिन्होंने भारतीय महिलाओं को उत्पीड़ित के रूप में चित्रित करने और सनातन धर्म की नींव को कमजोर करने का प्रयास किया। इस पुस्तक में लेखक अपने तर्कों से उन सभी दावों का खंडन करते हैं। इसके अतिरिक्त, यह पुस्तक विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा भारतीय इतिहास को विक्षिप्त करना और अपने स्वयं के इतिहास को आगे बढ़ाने के लिए भाषा और शब्दों के हेर-फेर पर प्रकाश डालती है। इस पुस्तक में लेखक ऐतिहासिक अभिलेखों के साथ छेड़छाड़ और आख्यानों के सुनियोजित परिवर्तन पर विभिन्न तथ्य प्रस्तुत करके प्रकाश डालते हैं जिससे पाठकों को इन दावों का गंभीर रूप से मूल्यांकन करने का अवसर मिलता है। यह समृद्ध भारतीय संस्कृति की सभ्यता को भी दर्शाती है जहाँ प्रत्येक स्त्री का सम्मान किया जाता था। अतः यह पुस्तक भारतीय संस्कृति में स्थित उन सभी कुप्रथाओं को सिरे से खारिज करती है जिन्हें सनातन धर्म को धूमिल करने के उद्देश्य से भारत के लोगों पर थोपा गया था।

कृष्णांश अग्रवाल एक राष्ट्रवादी लेखक और शोधकर्ता हैं जिन्होंने अपना जीवन सनातन धर्म के अध्ययन के लिए समर्पित कर दिया है। सनातन धर्म में विशेष रुचि होने के कारण कृष्णांश ने सनातन धर्म के प्राचीन धर्मग्रंथों पर अपना ध्यान केंद्रित किया। अपने अध्ययन के दौरान, उन्होंने स्वीकार किया कि सनातन धर्म के विभिन्न पहलुओं को बाहरी स्रोतों द्वारा गलत तरीके से प्रस्तुत किया गया था। इसी कारण उन्होंने सनातन धर्म का अधिक सटीक और प्रामाणिक चित्रण प्रदान करने का दृढ़ संकल्प लिया। सनातन धर्म देश की पहचान का एक अभिन्न अंग है, यह दृढ़ विश्वास रखते हुए वे भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत की रक्षा करने के लिए प्रतिबद्ध हैं। वह, भारत और भारतीयों के गौरव, शक्ति और उज्ज्वल भविष्य के स्रोत के रूप में सांस्कृतिक विरासत को पुनः प्राप्त करने के मार्ग पर लगातार अग्रसर हैं।